Reg. No. 124726035RC0001 ISSN : 2562-6086

पुस्तक भारती रिसर्च जर्नल

Our Golden Heritage

April-June 2022

पुस्तक भारती रिसर्च जर्नल

PUSTAK BHARATI RESEARCH JOURNAL

A Peer Reviewed Journal

त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष- 4, अप्रैल-जून, 2022, अंक – 2

प्रधान संपादक : डॉ. रत्नाकर नराले

सह संपादक : डॉ. राकेश कुमार दूबे

रिव्यू कमेटी

डॉ. प्रो. तंकमणि अम्मा, तिरुवनन्तपुरम्

प्रो. हेमराज सुंदर, मारीशस

डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय, मुंबई

प्रो. डॉ. शांति नायर, केरल

डॉ. सिराजुद्दिन नुर्मतोव, उजबेकिस्तान

प्रो. दक्ष्य मिस्त्री, बड़ोदा

प्रो. कृष्ण कुमार मिश्र, मुंबई

संपादक मण्डल

प्रो. सोमा बंद्योपाध्याय, पश्चिम बंगाल

प्रो. अरुणा सिन्हा, वाराणसी

प्रो. विनोद कुमार मिश्र, त्रिपुरा

प्रो. उमापति दीक्षित, आगरा

प्रो. उपुल रंजीथ हेवावितानागामगे, श्रीलंका

डॉ. मैरम्बी नुरोवा, ताजिकिस्तान

प्रो. दर्शन पाण्डेय, दिल्ली

परामर्ष मण्डल

डॉ. तुलसीराम शर्मा, कनाडा

डॉ. मनोज कुमार पटैरिया, नई दिल्ली

डॉ. एन. के. चतुर्वेदी, जोधपुर

प्रो. नीलू गुप्ता, अमेरिका

डॉ. मृदुल कीर्ति, आस्ट्रेलिया

प्रो. कमलेश शर्मा, कोटा

संरक्षक मण्डल

डॉ. यशवंत पाठक, अमेरिका

श्री रतन पवन, अमेरिका

श्री पंकज पटेल, अमेरिका

पत्रिका का मूल्य / सदस्यता राशि संस्था के सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, मंगारी के खाता संख्या 5144696109 (IFSC: CBIN0281306) में जमाकर उसकी सूचना मेल या नं. +91-7355682455 पर दें।

अनुक्रमणिका

संपादकीय

1. काशी की धरती और बनारसी संस्कृति : सामाजिक समरसता की थाती — 1
   डॉ. अलका आर. गुप्ता
2. Space Metallurgy in Valmiki Ramayana — 6
   Satya Narain and Navin Chandra
3. आधुनिक आलोचना में हिंदी उपन्यास की विशेषताएँ — 20
   डॉ. मैरम्बी नुरोना
4. उज़्बेकिस्तान में हिन्दी भाषा और साहित्य — 28
   प्रो. उल्फ़त मुहिबोवा
   गुल्योरा शेरमातोवा
5. इक्कीसवीं शती के प्रवासी हिन्दी उपन्यास में नवीन अनछुई समस्याएँ (महिला लेखिकाओं के संदर्भ में) — 34
   डॉ. मधु संधु
6. आदिवासी साहित्य विमर्श : अवधारणा और स्वरूप — 40
   डॉ. जयंतिलाल.बी. बारीस
7. डॉ. रामविलास शर्मा की आलोचना-क्रांति का कवि : निराला — 48
   डॉ. नीलम सिंह
8. मॉरीशसीय रचनाकार : रामदेव धुरंधर (छह खंडीय उपन्यास 'पथरीला सोना' में भोजपुरी का प्रभाव) — 57
   डॉ. अलका धनपत
9. सुनहरे भविष्य का कवि — 64
   प्रो. प्रीति सागर
10. हिमाचल प्रदेश में प्रचलित विवाह संस्कार लोकगीत — 69
    डॉ. प्रकाश चन्द

संपादकीय कार्यालय

Toronto, Ontario, Canada, M2R

email : pustak.bharati.canada@gmail.com

Web : pustak-bharati-canada.com

प्रबंध एवं वितरण

Pustak Bharati (Books-India)Publishers & Distributors

H.No. 168, Nehiyan,Varanasi-221202, U. P. India

email: pustak.bharati.india@gmail.com

* प्रत्येक शोध-पत्र में व्यक्त विचार लेखक के अपने हैं। संपादक मंडल का उससे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

संपादकीय

रत्नाकर नराले

संयुक्त राष्ट्र में हिंदी को मान्यता

भारत सरकार की विदेश मंत्री आदरणीय (अब स्वर्गीय) महोदया सुषमा स्वराज जी के कर कमलों से ग्यारहवाँ विश्व हिंदी सम्मान देने के लिए जब मुझे भारत सरकार ने अगस्त, 2018 में मॉरीशस बुलाया तब उस महान अधिवेशन में श्रीमती सुषमा स्वराज जी के बुलंद व्याख्यान का मुख्य विषय था हिंदी भाषा को संयुक्त राष्ट्र में अधिकृत भाषा का स्थान प्राप्त कराने का संकल्प. तालियों की विराट गूँज के साथ विशाल जनसभा ने उस घोषणा का जो तहे दिल से स्वागत किया था वह जयघोष हमारे कानों में अभी तक प्रतिध्वनित हो रही है. हिंदी भाषा के जागतिक श्रेणि में उच्च स्तर पर लाने में यह सबसे अहम कदम था, जिसके लिए हम हिंदी प्रेमी माननीय सुषमा स्वराज जी के सदैव ऋणी रहेंगे.

संयुक्त राष्ट्र समाचार (https://news.un.org/) की दैनिक ऑडियो हब जिसमें दैनिक समाचार संयुक्त राष्ट्र की एजेंसियों (https://bit.ly/UNinActionSeries) का काम अब छह आधिकारिक भाषाओं- अरबी, चीनी, अंग्रेजी, फ्रेंच, रूसी और स्पेनिश के अलावा हिंदी, किस्वाहिली और पुर्तगाली में उपलब्ध हो गई है. इसके अतिरिक्त न्यूज़ रूम के लिए, यूएन की वीडियो न्यूज़ वायर सेवा (http://www.unmulti-media.org/tv/unifeed/) पत्रकारों को प्रत्येक सप्ताह के पाँच दिन (सोमवार-शुक्रवार) प्रसारण-गुणवत्ता वाले वीडियो की पेशकश करके महत्वपूर्ण वैश्विक मुद्दों को हिंदी में भी कवर करेगी.

जागतिक सम्मान का स्थान तो प्राप्त हो गया, अब बारी है राष्ट्रभाषा के स्थान की. यह तो बहुत सकुचाहट की बात है कि स्वयं भारतीय लोगों को ही इस बात की महत्ता समझ में ही नहीं आ रही है, फिर भी हमें चाहिए कि लगे रहें.

1 काशी की धरती और बनारसी संस्कृति : सामाजिक समरसता की थाती

डॉ. अलका आर. गुप्ता

जहाँ कण–कण में शिव का वास है, जहाँ ज्ञान–दर्शन अध्यात्म की अविरल धारा बहती है, जहाँ अन्तिम साँस लेने से जीवन–मरण के भँवर से मुक्ति मिल जाती है, ऐसी अनोखी और अलबेली नगरी है–काशी। विश्व पटल पर काशी की सनातन अस्मिता एक प्राचीन, धार्मिक व सांस्कृतिक नगरी के रूप में अंकित है। काशी नाम का निहितार्थ और गूढ़ाशय मुक्ति–ज्ञान –ध्यान–साधना तथा सिद्धि इन पाँच उद्देश्यों से सन्निहित है। ''काश्यते इति काशी''– अर्थात् जो प्रकाशित है वही काशी है।[1] वाराणसी नगरी उत्तर प्रदेश में गंगा नदी के बाएं तट पर अक्षांश $25^0$18′ उत्तर और देशान्तर $83^0$1′ पूर्व में स्थित है। इस नगरी की आकृति अर्धचन्द्रकार हैं। गंगा के ऊँचे और लंबे कंकरीले कगार पर अवस्थित होने के कारण इस नगरी को नदी की बाढ़ से कोई भय नहीं हैं। दक्षिण–पूर्व दिशा में गंगा नदी तथा उत्तर पूर्व दिशा में वरूणा नदी प्राकृतिक रूप में वाराणसी की रक्षा करती है। पश्चिमी सीमा रेखा असि नामक लघु नदी अब एक नाले के रूप में है। असि तथा वरूणा दोनों गंगा में मिलती हैं।[2] काशी अन्य दो नामों से भी जानी जाती है वाराणसी एवं बनारस। उत्तरवाहिनी गंगा तट पर स्थित काशी का नामकरण वाराणसी इसके वरूणा व असि नामक सहायक नदियो के मध्य अवस्थित होने के कारण पड़ा।

एक मान्यता के अनुसार वाराणसी शब्द का अर्थ है एक विशेष स्थान या बिन्दु पर पहुँचना जिसके बाद भविष्य में उस व्यक्ति का जन्म नहीं होता और उसे पृथ्वी पर लौटकर आना नहीं पड़ता अर्थात् वाराणसी में पुनर्जन्म नहीं है।[3] 24 मई, 1956 के वाराणसी गजेटियर के दसवें पृष्ठ पर मत्स्यपुराण में उल्लिखित इस प्राचीन नाम को प्रशासनिक प्रयोग के लिए स्वीकार कर लिया गया है। उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री डॉ0 सम्पूर्णानन्द ने इसे आधिकारिक मान्यता प्रदान की थी।[4] वाराणसी का ही भाषान्तर बनारस है, जिससे यहाँ के लोगों के मूल स्वभाव का बोध होता है। जीवन मे रस–मौज–मस्ती–जोश ताजा मिजाज हमेशा बना रहे, कभी कम न हो, इस अर्थ में 'बनारस' नाम की उपयोगिता है। वास्तव में यह शब्द ''बनारसी संस्कृति'' का संवाहक भी हैं। इतिहास के पन्नों से एक और नाम का पता चलता है–मुहम्मदाबाद–जिसे औरंगजेब ने रखा था हालांकि यह नाम अल्पकालिक ही रहा।[5]

किसी भी शहर को समझने के लिए इतिहास, भूगोल, संस्कृति, धर्म, अर्थ, खान–पान, जीवन–शैली आदि का एक वृहद अवलोकन आवश्यक हो पाता है। इस दृष्टि से वाराणसी 'लघु–भारत' का एक सटीक व समीचीन प्रतिनिधि है। यहाँ 3300 से अधिक हिन्दू मन्दिर व देवालय हैं, 1388 के आस–पास मस्जिद व मजार हैं, 12 चर्च हैं, 3 जैन मन्दिर हैं, 9 बौद्ध मन्दिर हैं, 3 सिक्ख मन्दिर हैं। यह दुनिया का अकेला शहर हैं जहाँ इतनी बड़ी संख्या में हिन्दू एवं मुस्लिम पवित्र धाम एक साथ स्थित है।[6] इसके अतिरिक्त यहाँ चारों धाम है, 7 पुरी है, 12 ज्योर्तिलिगं है, 12 सूर्य मन्दिर है, 56 विनायक (गणेश मन्दिर) है, 8 भैरव मन्दिर है। सभी शक्ति पीठ है, 9 दुर्गा व 9 गौरी मन्दिर है। इस प्रकार, वाराणसी भारत के सभी प्रमुख धर्मों को विशेषतया हिन्दू धर्म को स्थापत्य कला के विभिन्न प्रतीकों से प्रतिबिम्बित करता है।

हिन्दी में एक कहावत है– 'काशी का अद्भुत व्यवहार, सात बार नौ त्योहार'। अर्थात् काशी में एक सप्ताह में 9 त्यौहार मनाया जाता है जो धार्मिक, सांस्कृतिक एवं स्थानीय विविधता के वैशिष्ट्य को बखूबी दर्शाता है। इतिहासकारों ने

सामान्य तौर पर काशी के हिन्दू और बौद्ध पक्ष को उजागर किया है जिसमें काशी का इस्लामी पक्ष अपेक्षाकृत कम प्रकाश में आ सका है। यदि मध्यकालीन फारसी ग्रंथों के आधार पर इस्लामी इतिहास का शोध किया जाये तो सम्भव है कि काशी के विरासत में नये कशीदे काढ़े जा सकें।[7]

काशी के सांस्कृतिक समृद्धि को सँवारने में इसके भौगोलिक एवं खगोलीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण स्थान है जिसका प्रथम व्यवस्थित मिश्रण किया है एक ब्रिटिश अधिकारी जेम्स प्रिंसेप ने जो सच्चे अर्थों में एक बनारस–प्रेमी शोधकर्ता रहे। जेम्स प्रिंसेप ने बनारस का प्रथम मानचित्र तैयार किया, प्रथम जनगणना करायी, इसके तापमान का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया, टकसाल का निर्माण करवाया, यहाँ सुगम जल–निकासी हेतु भूमिगत (सुरंगीय) नाली–व्यवस्था की स्थापना की जो आज भी विस्मयकारी किन्तु उपयोगी है, साथ ही कर्मनाशा नदी पर मजबूत व सुन्दरपुल निर्मित करवाया। इतना ही नहीं जेम्स प्रिंसेप ने बनारस लिटरेरी सोसाइटी की स्थापना की, अंग्रेजी भाषा के दो पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ किया– 1. जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी, 2. ग्लीनिंग्स ऑफ साइंस, काशी पर एक सचित्र पुस्तक लिखी–बनारस इलस्ट्रेटेड और अशोककालीन ब्राम्ही लिपि के वाचन में दिन–रात एक कर दिया। इतिहासकारों का मानना हैं कि यदि प्रिंसेप ने ब्राम्ही लिपि का वाचन न किया होता तो अशोक जाने कब तक भारतीय इतिहास के लिए अनजाने रह जाते।[8]

1820 से 1830 के मात्र दस वर्ष की अल्प अवधि में जेम्स प्रिंसेप ने उक्त उपलब्धियाँ अर्जित की हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि बनारस शहर की वर्तमान समस्याओं के निराकरण हेतु समय व संसाधन की अपेक्षा शोधपरक दृष्टिकोण, लक्ष्य–केन्द्रित प्रवृत्ति एवं शहर के प्रति लगाव की अधिक आवश्यकता है।

ऐसा माना जाता है कि काशी मानव–मन के शोध–यात्रा का एक पड़ाव है। यहाँ निरन्तर ज्ञान, अध्ययन एवं अध्यापन का दीपक प्रज्वलित होता रहता है। काशी सर्व विधा की राजधानी है। शिक्षा के क्षेत्र में काशी का उल्लेख वैदिक काल से ही है, इसलिए ज्ञान अर्जन के उद्देश्य से देश–विदेश के अध्येता काशी आते रहे हैं। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेन सांग के शब्दों में– ''काशी के नागरिक अत्यधिक शिष्ट थे तथा शिक्षा के प्रति उनका अनुराग था।'' प्राचीनता, निरन्तरता और विविधता से सवंर्द्धित काशी की शिक्षा–व्यवस्था वर्तमान में भी ज्ञान–पिपासुओं में स्पष्टतः दृष्टव्य है। सरकारी, निजी और व्यक्तिगत स्तर पर औपचारिक, अनौपचारिक एवं दूरस्थ शिक्षा को विभिन्न माध्यमों से बड़े मझोले–छोटे भवन–परिसर से लेकर संकरी गलियों के तंग कमरो में ज्ञान के आदान–प्रदान की परिपाटी काशी की एक विशेष शैक्षिक पहचान हैं।

संस्कृत, हिन्दी, उर्दू साहित्य, दर्शन, संगीत, कला, नाट्यशास्त्र, चित्रकला, ज्योतिष, जादू–टोना, तंत्र–मंत्र शास्त्र, वेद–पुराण, उपनिषद्, कर्म–कांड, योग–विद्या, शिल्प कला, नक्काशी, बुनकारी, पाक कला, जरी व रेशम की कशीदाकारी आदि अनेकानेक ज्ञान की शाखा–प्रशाखा काशी के कोने–कोने में बिखरी है। इतना ही नही इन विद्याओं व विधाओं के विशारद व सिद्धहस्त गुरूजन भी यायावार (घुमक्कड़) की भांति बिना किसी टीमटाम के कभी भी कही भी मिल सकते हैं और कभी उन्हें ढूंढने में एड़ी–चोटी एक करनी पड़ती है। अब यह सीखने वालों की उत्कंठा एवं तीव्रता पर निर्भर करता है कि वह कितना, कहाँ तक और किस सीमा तक ज्ञान के लिए व्याकुल हैं। काशी में एक सच्चे विद्यार्थी की व्याकुलता ही ज्ञान के पराकाष्ठा की दिशा तय करती है। ज्ञान का क्षेत्र कोई भी हो यह सतत् साधना के अभाव में अप्राप्य हो जाता है। यह बात संगीत कला पर भी लागू होती है। शिवजी नटराज के रूप में तांडव नृत्य करते हैं और काशी उनकी प्रिय नगरी हैं। इसलिए इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं हैं कि यह नगरी नट (नृत्य), नाट्य तथा

संगीत की जन्मभूमि है।

सौभाग्य से काशी की जीवन धरती ने संगीत के जाज्वल्यमान नक्षत्रों को जन्म देने का गौरव प्राप्त किया है। विश्व संगीत में 'बनारसी घराना' का एक पृथक व महती स्थान है। इसके गायन की विशेष शैली जैसे–ठुमरी, दादरा, टप्पा, धमार, कजरी, चैती आदि, वादन यंत्र जैसे–शहनाई, सितार, तबला, सारंगी आदि तथा नृत्य कला में कत्थक का कोई जोड़ नहीं है। उस्ताद बिस्मिल्लाह खाँ, पंडित रवि शंकर, गोपाल कृष्ण महाराज, सितारा देवी, गिरिजा देवी, गोपी कृष्ण, लच्छू महाराज आदि काशी के संगीत–कलाकारों ने सम्पूर्ण भारत के साथ–साथ वैश्विक मंच पर काशी की संगीत परम्परा व पांडित्य को ससम्मान स्थापित करने में अपना जीवन समर्पित किया है। इस प्रकार सदियों पूर्व की अमूल्य घरोहर गायन–वादन–नर्तन की भारतीय विशिष्ट संगीत कला को शनैः–शनैः नवीन शैलियों से आत्मसात् कराते हुए अपनी मौलिकता व विद्धता से उसे काशी का बना लने की क्षमता से यहाँ के कलावन्तों ने काशी की संगीतात्मकता में अनवरत श्री वृद्धि की है। इतना ही नही स्थानीय कलावन्तों के अलावा बाहर से आकर काशी बस जाने वाले मूर्द्यन्य विद्वानों व संगीत साधकों को भी काशी के कलाप्रेमी नागरिक समुदाय ने भरपूर सम्मान दिया है।[9]

देशी–विदेशी पर्यटकों एवं तीर्थ यात्रियों के लिए काशी सदैव से ही आकर्षण का केन्द्र रही है। यहाँ की कुछ वस्तुएँ विश्व प्रसिद्ध हैं जैसे–पान, साड़ी, जरी, खिलौने, मिठाई, काष्ठ कला, पीतल बर्तन आदि। इनके आगे 'बनारसी' शब्द जुड़ने से इनकी महता व प्रभावशीलता बढ़ जाती है। बनारसी व्यक्ति का जीवन जीने का तरीका और जीवन को देखने का नजरिया जरा हट कर होता है अर्थात् उसका बोल–चाल और हाल–चाल, चाल–ढाल सब अनूठा लगता है।[10] अल्हड़ता, फक्कड़ता और अक्खड़ता एक शुद्ध बनारसी व्यक्ति का मूल स्वभाव होता है। वह अपने ही धुन में रमा रहता है और अपने जीवन से कोई शिकायत किये बिना जो मिला उसी में संतुष्ट मदमस्त होकर बिंदास–बेफिक्र–बेलौस ठहाके लगता है। बनारसियों में सबसे बड़ा गुण है–आत्मीयता। यदि आप परदेशी हैं, रास्ता भूल गये हैं तो आपको वह सही रास्ता ही नहीं बतायेगा, बल्कि खाली रहने पर मंजिले मकसूद तक पहुँचा देगा। ऐसी आत्मीयता अन्यत्र दुर्लभ हैं।[11]

सुबह–ए–बनारस की मनोहारी घटा हो या सांध्यकालीन गंगा आरती का दिव्य आनन्द, खरीददारी में मोल–भाव की चतुराई हो या बनारसी ठगो से बच पाने की असीम इच्छा, एक ही हाथ में कचौड़ी, तरकारी, जलेबी के तीन दोनों (पत्ते से बना पात्र) को एक के ऊपर एक रख कर खाने की कलाबाजी हो या किसी ठेले के पास भीड़ के रेले में बनारसी गोलगप्पे चाट के चटखारे के चक्कर की कवायद हो मानो ये सब बनारसी सतरंगी लीलाएं हैं जो इसमें डुबकी लगायेगा वही जीवन का रसास्वादन कर पायेगा।

काशी का कोतवाल काल भैरव कहे जाते हैं जिन्हें मदिरा का प्रसाद चढ़ता है तथा काशी के राजा बाबा विश्वनाथ को भांग का सेवन पसंद है। जिस नगरी का कोतवाल व राजा क्रमशः नशेड़ी व भगेड़ी हो वहाँ का बाशिंदा एक दूसरे से तो यही कहेगा–''का रजा का हाल चाल हौ''–''एकदम चकाचक।'' बनारसी अलंकार (स्थानीय गाली जिसे कभी अप्रिय नहीं माना जाता है) से सुसज्जित भाषा का इस्तेमाल करना प्रत्येक बनारसी का आन बान शान होता है जिसका प्रयोग वह बिना लज्जा व भय के करता है। यद्यपि इस भाषा में कभी भी किसी का भय अपमान निहित नहीं होता।

पान की दुकान और चाय की अड़ी (दुकान) बनारस में राजनीतिक सामाजीकरण के प्रमुख अभिकर्त्ता (एजेंट) हैं क्योकि यहाँ गाँव के चौपाल की तरह स्थानीय, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों पर बड़ी ही दूरदर्शिता, तार्किकता व आंकड़ों के साथ बहस की जाती है। कभी कभी बहस की गति व आवेग सीमा पार होने पर ऐसा भान होता है कि अभी तीसरा विश्व युद्ध यही छिड़ जायेगा किन्तु अगले ही पल किसी

अनायास अट्टाहस से पूरा माहौल सद्भावनापूर्ण व शांतिमय हो जाता हैं।

वास्तव में, बनारस का हर पानवाला, चायवाला या गली में बनियान और गमछे (एक प्रकार का सूती तौलिया) में बैठा साधारण सा दिखने वाला बनारसी नागरिक राजनीति, धर्म, अर्थशास्त्र जैसे विषयों का गूढ ज्ञानी होता है बशर्ते उनकी बातों को संजीदगी से सुना जाये। प्रख्यात कवि नज़ीर बनारसी ने काशी नगरी के लिए कहा है–''खाक भी जिस जमीं की पारस हैं, शहर मशहूर वह बनारस हैं।'' अर्थात् जहां की धूल भी पारस हैं, वहीं मशहूर शहर बनारस हैं। इस शहर की खासियत है कि यहां के देवी–देवता, बाबा शंकर, माँ अन्नपूर्णा, पाप–क्षालिनी माँ गंगा, वरूणा और असि नदियाँ, यहाँ की पवित्रता व सहजता, महाश्मशान और मुक्ति का मार्ग सभी को बिना भेदभाव प्राप्त है।[12]

इक्कीसवीं शताब्दी के तीसरे शतक के प्रारम्भिक काल में बनारस शहर का निरीक्षण करने से पता चलता है कि औद्योगिकीकरण, नगरीकरण, आधुनिकीकरण की प्रक्रियाओं से गुजरता हुआ यह नगर तेजी से विकसित हो रहा हैं। वर्तमान सरकारी व्यवस्था में विकास–पथ पर नये–नये कीर्तिमान भी गढ़े जा रहे हैं। अब प्रश्न यह उठता हैं कि विकास की कौन सी परिभाषा काशी या बनारस के लिए उपयुक्त होगी। तेजी से बसते कालोनी, मॉल, मल्टीप्लेक्स, मेट्रो की काशी जहाँ अति महत्वाकांक्षी लोग सम्पत्ति, विलासिता, उपभोक्तवादी संस्कृति के पीछे भागम–भाग करते हुए 'बिना हँसे बिना रूके जीवन' से आगे दौड़े या 'स्वान्तः सुखाय सिद्धांत' पर चलने वाला शुद्ध बनारसी जीवन जहां सादगी है, ठहरने की गत्यात्मकता हैं, उन्मुक्त हँसी हैं और चिंता की चिता सदैव प्रज्वलित रहती हैं।

विकास की एक ही परिभाषा को सभी पर समान रूप से लागू नहीं किया जा सकता। हर शहर की एक खास पहचान होती है जो उसे दूसरे शहर से अलग करती हैं। बनारस की पहचान उसकी जीवतंता हैं जिसे संरक्षित करना आज के समय की मांग हैं। हालांकि आज बनारस अनके गम्भीर समस्याओं से जूझ रहा हैं, जैसे–गन्दगी, यातायात जाम, जल निकास तंत्र की दुर्व्यवस्था, जनसंख्या का निरंतर बढ़ता दबाव, प्रदूषण में लगातार वृद्धि, मूलभूत अवसंरचना (Basic Infrastructure) की लचर स्थिति, नागरिक दायित्वो ं के निवर्ह न में सुस्ती व अरूचि इत्यादि। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि काशी को क्योटो (जापान का एक प्राचीन शहर) जैसा बनाया जाये या इसे एक अति आधुनिक शहर की श्रेणी में रखने हेतु सारे कठिन एवं कष्टकारी प्रयास किये जाये। ऐसे प्रयास काशी का मूल तत्व/प्रकृति पर कुठाराघात जैसे होगें। यदि किसी को औद्योगिक या आधुनिक शहर जाना है तो वह मुंबई या बैंगलूर जा सकता हैं किन्तु बनारस आने या बसने का कारण तो दूसरा होगा।

यदि यहाँ के मूल एवं स्थानीय उद्यागे–धन्धों में पूंजी–निवेश कर प्रचार–प्रसार किया जाये, सरकारी सहायता के द्वारा नव रोजगार सृजित किया जाये तो खूब सम्भव हैं कि बनारस की अर्थव्यवस्था मजबूत हो, लुप्त होती व्यावसायिक कला पुर्नजीवित हो और युवाओं को सीमित आय वाली नौकरी पाने के लिए बनारस छोड़ने पर विवश न होना पडे। बुनियादी ढांचों की मजबूत व उच्चस्तरीय रख–रखाव किया जाये ताकि कोई भी उद्यमशील व्यक्ति अपनी ऊर्जा व समय नष्ट किये बिना अपना कार्य यहाँ आरम्भ करें जिससे स्वयं व शहर का लाभ हो।

एक और बात संज्ञान में लाने योग्य हैं कि कोई भी पर्यटक जब काशी आगमन करता हैं तब वह मेट्रो या एसी बस से नहीं अपितु रिक्शा या छोटी नाव में बैठकर बनारस शहर का जायजा लेना चाहता हैं। इसलिए आवश्यक है कि इस तरह के नैसर्गिक सौन्दर्य, मौलिकता व सरलता को अति आधुनिकता के थपेड़ों से बचाया जाये।

हालांकि हाल के वर्षों में काशी के पुरातन एवं वर्तमान स्वरूप में भारी परिवर्तन दृष्टिगोचर होता हैं जिसके कारण सुरमयी–इन्द्रधनुषी–खुश

मिजाज बनारसी संस्कृति के कलेवर में कई नये रंगों–रसों का समावेश हुआ है। परिवर्तन व निरंतरता किसी भी संस्कृति को दीर्घायु बनाने हेतु खाद का काम करती हैं। बनारस और इसकी संस्कृति इसका अपवाद नहीं है।

एक तरफ बनारस में गगनचुंबी इमारते हैं, सड़क पर दौड़ती महंगी गाड़ियाँ है, रिहायशी इलाके हैं, बाजार में गहने–कपड़ों की बड़ी–बड़ी वातानुकूलित दुकाने हैं जहां खरीददारों की लम्बी कतारे हैं जो लगभग रोज ही मिलती हैं। कोलाहल, भागम–भाग और असंतुष्ट मानसिकता का यह दृश्य बनारस के आधुनिकता का बखान करती हैं। वहीं दूसरी तरफ गंगा किनारे बसी घुमावदार पतली लहराती गलियों में पक्के महाल (काशी का पारम्परिक स्थल) के मदमस्त, कल की परवाह किये बगैर आज को भरपूर जीने के आदी बनारसी जन समुदाय हैं जो गर्मी में ठंडई (दूध–मलाई से बना शर्बत) और सर्दी में मलईयों (आसे से निर्मित दूध की विशेष खाद्य–पेय पदार्थ) से अपने मन को तृप्त कर लते हैं। काशी की धरती पर पल्लवित–पुष्पित इस विलक्षण संस्कृति की मासूमियत या पवित्रता ही हर सैलानी का कौतूहल है जिसे जीवित रखना पर्यटन की संजीवनी होगी।

फलतः यह कहा जा सकता है कि काशी के कल्याण हेतु यह आवश्यक है कि जन मानस को सामाजिक–राजनीतिक जागरूकता के द्वारा उन्हें दायित्व–प्रतिबद्ध बनाया जाये। क्योंकि अन्ततः नागरिक समुदाय के सजग व सशक्त व्यवहार से ही राज्य की कानूनी व्यवस्था भ्रष्ट होने से बचती हैं। अतः सरकार के सहयोग, गैर–सरकारी संस्थानों के सक्रियता एवं आम जनता के जागरूकता से काशी की पारम्परिकता को नवीन सन्दर्भों में संजोया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:

1. Mehta, Bhanu Shankar (2013) : Unseen Banaras, Varanasi : Pilgrims Publishing, p. 48
2. Pandey, Uma (1980) : Varanasi, Delhi : MacMillan, p.03
3. ठाकुर, मुन्नालाल, (2010) : सोच विचार (काशी अंक), वर्ष 2, अंक 1, पृ0 99
4. www.amarujala.com/varanasi/24 May 2021
5. ठाकुर, मुन्नालाल, सोच विचार, पृ0 99
6. Singh, Rana P.B. (2009) : Banaras, The Heritage City of India – Geography, History and Bibliography, Varanasi : Indica Books, P. 25
7. अलकबीर, (2010) : सोचविचार (काशी अंक), वर्ष 2, अंक 1, पृ0 164
8. मोतीचन्द्र, (2010): काशी का इतिहास, वाराणसीः विश्वविद्यालय प्रकाशन, पृ0 339–347
9. चन्द्रमौली, के0 (2012) : आनन्द कानन काशी, वाराणसी : पिल्ग्रीम्स पब्लिशिंग, पृ0 309–328
10. Mehta, Bhanu Shankar (2013) : Unseen Banaras, p.107
11. मुखर्जी, विश्वनाथ (2013) : बना रहे बनारस, वाराणसी विश्वविद्यालय प्रकाशन, पृ0 45
12. चन्द्रमौली, के0, आनन्द कानन काशी, पृ0 343

एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग
उदय प्रताप कालेज, वाराणसी,
उत्तर प्रदेश, भारत

2

SPACE METALLURGY IN VĀLMĪKI RĀMĀYAṆA

Satya Narain* and Navin Chandra**

ABSTRACT

In this paper, we provide texts of two rare and wonder objects mentioned in the Vālmīki Rāmāyaṇa. One was Lord Śiva's bow which Prince Rāma broke in order to get married to Sītā. The second was Rāma's astra, a supernatural missile used by Rāma to kill Rāvana. The Śiva's bow and Rāma's astra appear to be made of unknown super materials. Whereas Śiva's bow was made of super-heavy material and possessed a high metallic shine, Rāma's astra, in contrast, was made of super-light material. The contextual description establishes that these wonderful objects had a terrestrial origin. We interpret that these wonderful objects were in-space manufactured (ISM) from the super materials constituted in space or sourced from celestial bodies. It is concluded that Vālmīki Rāmāyaṇa is embedded with the advanced concepts of space metallurgy and that it can inspire modern science to constitute new metallic alloys and manufacture objects possessing super–properties in outer space.

INTRODUCTION

The Vālmīki Rāmāyaṇa is the most ancient epic of India and the world in the Sanskrit language. Indian tradition holds that Vālmīki was the first poet (*ādi-kaviḥ*), and Vālmīki Rāmāyaṇa was the first poetic composition (*ādi-kāvyam*). In the present study, verses have been numbered in the format of 'Book.Chapter.Verse' corresponding to the adopted base reference Vālmīki Rāmāyaṇa[1] by Desiraju Hanumanta Rao and KMK Murthy. Also, it may be noted that instead of its verses' literal translation, we have opted for its meaning in free-flowing English, as understood by us. In addition, we have described the context and highlighted the keywords or phrases of the verses, which provide information related to metals and metallic objects, in bold letters to develop the readers' interest in the original Sanskrit text. Further, we have derived technical information from the "textual metal evidence" through interpretations and inferences based on the background of the modern knowledge of metallurgy.

The Vālmīki Rāmāyaṇa has considerable textual metal evidence confirming that gold was most predominant metal at that time, and it was accompanied by extensive use of iron in making various weapons. Besides gold and iron, other antique metals, viz. silver, copper, iron, tin, lead, and early bronze, were also known in that era. In addition, there was recognition that many more unknown metals existed on the Earth's surface. Ancient Indians in the Rāmāyaṇic era also had a scientific concept of how the metals originated on the Earth's surface. Here we focus on two wonder objects made of some unknown super-metals described in the Vālmīki Rāmāyaṇa in two different contexts. The first object was Lord Śiva's divine bow broken by Prince Rāma in order to get married to Sītā. The second object was Rāma's astra, an arrow-like supernatural missile used by Rāma to kill Rāvaṇa. In this paper, we analyze the textual evidence related to these two

wonder objects and search for scientific clues about the materials used to make them based on modern scientific background.

LORD ŚIVA'S BOW

Viśhvakarmaṇā, a celestial architect, crafted two identical bows, which were named *pināka* and *sharanga*. The first divine bow, *pināka,* was for Lord Śiva. The second divine bow, *sharanga*, was for Lord Viṣṇu. The legend of Lord Śiva's bow and how it came into the custody of King Devarata, an ancestor of King Janaka and how Viṣṇu's bow came into the possession of Sage Richika, grandfather of Sage Paraśurāma, is narrated as follows:

King Janaka narrated the legnd of Lord Śiva's bow to Sage Viśvāmitra:

प्रीतियुक्तस्तु सर्वेषां ददौ तेषां महात्मनाम् |

prīti yuktaḥ tu sarveṣhām dadau teṣhām mahātmanām

तदेतद्देवदेवस्य **धनूरत्नं** महात्मनः || VR1.66.12

tat etat devadevasya dhanū ratnam mahātmanaḥ

न्यासभूतं तदा न्यस्तमस्माकं पूर्वजे विभो |

nyāsabhūtam tadā nyastam asmākam pūrvaje vibho

The great-souled God of gods (Lord Śiva) happily bestowed that bow to all gods. After that, those gods gave this gem of a bow to our ancestor (Devarāta) in trust and care.

Sage Paraśurāma also narrated the legend of two super bows to Rāma :

इमे **द्वे धनुषी श्रेष्ठे दिव्ये** लोक अभिपूजिते |

ime dve dhanuṣhī śhreṣhṭhe divye loka abhipūjite

दृढे बलवती मुख्ये सुकृते विश्वकर्मणा || VR1.75.11

dṛḍhe balavatī mukhye sukṛte viśhvakarmaṇā

There were two super bows. They were divine and highly regarded in the world. They were strong (*dṛḍhe*) and powerful (*balavatī*). These bows were superbly designed and created by Viśhvakarmaṇā.

तदा तु जृम्भितं शैवं **धनुर्भीम**पराक्रमम् || VR1.75.17

tadā tu jṛmbhitam śhaivam dhanuḥ bhīma parākrāmam

हुंकारेण महादेवः स्तम्भितोऽथ त्रिलोचनः |

humkāreṇa mahādevaḥ stambhito atha trilochanaḥ

Viṣṇu, through his yawn and humkara chant, rendered thee three-eyed Mahādeva (Lord Śiva) motionless. Lord Śiva could not string his great mighty long-bow.

King Janaka had decided that he would get his beautiful daughter Sītā married to a King or a Prince who would be able to string the Lord Śiva's bow. He appraised Sage Viśvāmitra that many kings had tried but failed to qualify the test of lifting and stringing the Śiva's bow.

King Janaka said:

तेषां जिज्ञासमानानां शैवं धनुरुपाहृतम् || VR1.66.18

teṣhām jijñāsamānānām śhaivam dhanuḥ upāhṛtam

न शेकुर्ग्रहणे तस्य धनुषस्तोलनेऽपि वा |

na śhekuḥ grahaṇe tasya dhanuṣhaḥ tolane api vā

I offered the bow to assembled kings who wanted to test the bow, but none of them had been able to grasp (*śhekuḥ grahaṇe*) and lift it (*tolane*) (due to its weight and girth)

As desired by Sage Viśvāmitra, King Janaka instructed his ministers to bring the Lord Śiva's bow for showing to Rāma and Lakṣmana.In this context, the following texts reveal several characteristics of Lord Śiva's bow:

Sage Viśvāmitra asked King Janaka to show Lord Śiva's bow to Rāma and Lakṣmana:

पुत्रौ दशरथस्येमौ क्षत्रियौ लोकविश्रुतौ |

putrau daśharathasya imau kṣhatriyau loka viśhrutau

द्रष्टुकामौ **धनुःश्रेष्ठं** यदेतत्त्वयि तिष्ठति || VR1.66.5

draṣhṭu kāmau dhanuḥ śhreṣhṭham yat etat tvayi tiṣhṭhati

These two (Rāma and Lakṣmana) are the sons of Daśaratha, who is a famous Kshatriya in the world, and they wish to see that most marvellous (*śhreṣhṭham*) bow in your possession.

King Janaka agreed to show the Lord Śiva's bow to Rāma and Lakṣmana:

तदेतन्मुनिशार्दूल **धनुः परमभास्वरम्** || VR 1.66.25

tat etat muniśhārdūla dhanuḥ parāma. bhāsvaram

रामलक्ष्मणयोश्चापि दर्शयिष्यामि सुव्रत |

rāma lakṣhmaṇayoḥ cha api darśhayiṣhyāmi suvrata

O, tiger among ascetic, O, Sage of sacred vows, I will show the supremely shining (*parāma. bhāsvaram*) bow to Rāma and Lakṣmana.

King Janaka's ministers brought the Lord Śiva's bow decorated with garlands:

जनकेन समादिष्टाः सचिवाः प्राविशन् पुरम् |

janakena samādiṣhṭhāḥ sachivāḥ prāviśhan puram

तत् **धनुः** पुरतः कृत्वा निर्जग्मुः **अमित औजसः** || VR1.67.3

tat dhanuḥ puratah kṛtvā nirjagmuḥ amita aujasaḥ

नृणाम् शतानि पंचाशत् व्यायतानाम् महात्मनाम् |

nṛṇām śhatāni paṃchāśhat vyāyatānām mahātmanām

मंजूषाम् अष्ट चक्राम् ताम् समूहुः ते कथंचन || VR1.67.4

maṃjūṣhām aṣhṭa chakrām tām samūhuḥ te kathaṃchana

ताम् आदाय तु **मंजूषाम् आयसीम्** यत्र तत् **धनुः** |

tām ādāya tu maṃjūṣhām āyasīm yatra tat dhanuḥ

Commanded by King Janaka, his ministers entered the city. They brought an exceedingly shining bow (*amita aujasaḥ*) in a casket made of iron placed on an eight-wheeled cart and tugged by the labour of five thousand tall and strong men.

Ministers annonuced to King Janaka that the Śiva's bow was ready for showing:

इदं **धनुर्वरं** राजन् **पूजितं** सर्वराजभिः |

idam dhanur varam rājan pūjitam sarva rājabhiḥ

मिथिलाधिप राजेन्द्र दर्शनीयं यदिच्छसि || VR1.67.6

mithilā adhipa rāja indra darśhanīyam yat ichchhasi

Here is the best bow (*dhanur varam*) revered by all kings. O, King! O, Lord of Mithilā! O, Indra among kings! This bow is what you wish to be shown to (Rāma and Lakṣmana).

The verse VR1.67.6 states that the divine bow in Mithila was an object of worship (*pūjitam*). Therefore, we infer that reference to the 5000 men tugging the bow on a cart in the verse VR1.67.4 was perhaps a part of standard worship protocol like that of the pulling of the Lord Jagannath chariot by thousands of devotees.

Sage Viśvāmitra asked Rāma to see the Śiva's bow. Rāma opened the casket and saw the bow. Rāma requested Sage Viśvāmitra and King Janaka to allow him to touch the Siva's bow and aim it. The King and the Sage said, go-ahead. The following verses describe what happened after Rāma touched the divine super bow:

Rāma strung the bowstring and aimed. However, in doing so, the bow snapped:

Rāma breaks the bow to win Sita as a wife.
Image credit: Raja Ravi Varm

रोपयित्वा मौर्वीम् च पूरयामास वीर्यवान् |

āropayitvā maurvīm cha pūrayāmāsa vīryavān

तत् **बभंज धनुर् मध्ये** नरश्रेष्ठो महायशाः || VR1.67.17

tat babhaṃja dhanur madhye naraśhreṣhṭho mahāyaśhāḥ

The valorous, immensely distinguished, and best among men (Rāma) affixed the bowstring and then fully stretched it to aim. But in doing so, the bow broke into two pieces in the middle.

When the bow broke, a great snapping sound arose:

तस्य **शब्दो महान्** आसीत् निर्घात सम निःस्वनः |

tasya śhabdo mahān āsīt nirghāta sama niḥsvanaḥ

भूमि कंपः च सुमहान् पर्वतस्य इव दीर्यतः || VR1.67.18

bhūmi kaṃpaḥ cha sumahān parvatasya iva dīryataḥ

The bow broke with a roaring sound like thunder and was accompanied by shattering sounds as if big rocks were falling from mountains in extreme earthquakes.

The event of breaking of Lord Śiva's bow is best described in another ancient text, Śrīmad-Bhāgavatam[2] (Canto 9, Chapter 10, Verse 6), as follows:

यो लोकवीरसमितौ **धनुरैशमुग्रं**

yo loka-vīra-samitau dhanur aiśam ugraṁ

सीतास्वयंवरगृहे त्रिशतोपनीतम् ।

sītā-svayaṁvara-gṛhe triśatopanītam

आदाय बालगजलील इवेक्षुयष्टिं

ādāya bāla-gaja-līla ivekṣu-yaṣṭiṁ

सज्ज्यीकृतं नृप विकृष्य बभञ्ज मध्ये ॥ VR9.10.6

sajjyī-kṛtaṁ nṛpa vikṛṣya babhañja madhye

O King, the pastimes of Lord Rāmacandra were wondrous, like those of a baby elephant. In the assembly where mother Sītā was to choose her husband among the heroes of this world, he broke the bow belonging to Lord Śiva. This bow was so heavy (*ugraṁ*) that three hundred men carried it, but Lord Rāmacandra bent, strung and broke it in the middle, just as a baby elephant breaks a stick of sugarcane[2].

Thus Lord Śiva's bow was the gem of bows (*dhanū ratnam*), the most marvellous (*dhanuḥ śhreṣhṭham*) and the best among all bows (*dhanur varam*). These descriptions confirm that Lord Śiva's bow was an object of wonder in the Rāmāyaṇic Era. Even though the text of the Lord Śiva's bow did not reveal its construction material, the text is inferred to reveal the main characteristics of the material of construction as follows:

Verse	Keyword or phrase	Inference
VR1.75.11	धनुषी **दिव्य** *dhanuṣhī divye*	The contextual background of Lord Śiva's bow establishes that it was not made on Earth and had a terrestrial origin. We infer that the bow was made in outer space.
VR1.66.25 VR1.67.3	**धनुः परमभास्वरम्** *dhanuḥ parāma.* *bhāsvaram* **अमित ओजसः**	The bow had high metallic shine and polish. We infer that the bow was made of highly lustrous metallic material.

VR1.66.18 VR1.75.17	न शेकुर्ग्रहणे तस्य धनुषस्तोलनेऽपि वा *na śhekuḥ* *grahaṇe tasya* *dhanuṣhaḥ tolane*	No King was able to grasp the bow or lift it. The bow was large and too heavy. We infer that the bow was made of high-density material.
VR1.75.11	**दृढे बलवती** *dṛḍhe balavatī*	The bow was strong. It was powerful in action. We infer that the bow was made of high-strength metal or its alloys.
VR1.67.17	तत् **बभंज धनुर् मध्ये** *tat babhaṃja* *dhanur madhye*	The bow broke into two pieces in the middle. It was a classical case of a brittle fracture. We infer that the bow was made of high-strength brittle metal or its alloys
VR1.67.18	शब्दो महान् *śhabdo mahān*	The bow suddenly broke with a supersonic sound. We infer that the bow was made from brittle metal or alloys or had become brittle upon ageing over a long period.

Based on its material characteristics as indicated in the above texts, we reason that the Śiva's bow was made of an unknown, high-density, highest lustre, brittle metallic material. The Platinum group of metals (PGMs) are the heaviest known lustrous metals. The six PGMs with their main characteristics are given below:

Metal	Density g/cm^3	Melting Point	Tensile Strength kg/mm^2	Characteristics
Iridium	22.65	2443°C	112	Silver -white, hard, brittle, excellent resistance to oxidation and challenging to work
Osmium	22.61	3050°C	-	Bluish-white, hard, brittle, poor resistance to oxidation and almost unworkable
Palladium	12.02	1554°C	17	Silver-white, soft and ductile
Platinum.	21.45	4769°C	14	Silver-white, malleable, excellent resistance to oxidation
Rhodium	12.41	1960°C	71	Silver-white, hard, brittle, excellent resistance to oxidation and difficult to work.
Ruthenium	12.45	2310°C	165	Silver-white, hard, brittle, poor resistance to oxidation and almost unworkable

The material characteristics of the bow resemble iridium which is heavy, hard, brittle, stable and high lustre metal. We infer that the Lord Śiva's bow was made of a naturally occurring complex iridium alloy containing other platinum group metals. Since the bow had a terrestrial origin, we further infer that the source of the bow's material was perhaps some rare metallic meteorite constituted of complex alloys of PGMs. The Vālmīki Rāmāyaṇa thus incorporates advanced concepts of the formation of complex alloys in asteroid bodies and in-space manufacturing of metallic objects.

The divine bow was long, difficult to grip, and very heavy. It was not easy to grasp, and its grip width was 3.5 inches. It is interesting to note that the bow was used as a measure of length in ancient India. One dhanu was equal to 4 aratni-s cubits (about 1.5-feet). The standard length of a bow was about six feet. It was a long bow, and its length was eight feet. The straight length of the bow was, say, ten feet taking into account the curvature of the bow.

The bow was very heavy. Its weight can be roughly calculated based on some assumptions. We have already inferred that the bow was made of an alloy of PGMs of density, say 22.5 g /cm^3. Further, we assumed the bow was crafted from a circular bar of 3.5 inches (8.9 cm) in average diameter and 10 feet (304.8 cm) in length. Based on the basic calculation of volume multiplied by density, the bow's weight comes out to be 426.5 kgs. Indeed, the calculated weight is quite heavyweight, considering that the world record for jerk weight lifting is 264 kgs. King Janaka was lucky to find great Rāma, who could lift such a heavy bow with his long arms (*mahābāhuḥ, ājānu bāhuḥ*) and prove himself eligible for marrying Janaka's beautiful daughter Sītā.

We have inferred that the bow was made of a most complex alloy of PGMs formed in space. New heavy materials may be required for structural applications on the moon's surface, though gravity is weaker by about 1/6th of its value on the Earth's surface. Thus, the texts related to Śiva's bow are relevant to modern science as it gives the advanced concept of manufacturing metallic objects of highest density in space.

RĀMA'S ASTRA (Supernatural MissileWeapon)

Vālmīki Rāmāyaṇa has several references to wonder objects such as *astra* (hereafter called supernatural missile weapon) and *vimana* (flying machines). We focus here supernatural missile weapon (*astra*) used by Rāma to kill Rāvaṇa. Rāma and Rāvaṇa had tumultuous and fierce battles for seven days during the Great war. Mātali, the charioteer, advised Rāma to use his supernatural missile weapon (*astra*) to kill Rāvaṇa as follows:

Mātali, the charioteer, reminded Rāma to use his *astra* to kill Rāvaṇa

विसृजास्मै वधाय **त्वमस्त्रं पैतामहं** प्रभो |

visṛjāsmai vadhāya tvamastraṃ paitāmahaṃ prabho

विनाशकालः कथितो यः सुरैः सोऽद्य वर्तते || VR6.108.2

vināśakālaḥ kathito yaḥ suraiḥ so.adya vartate

O, Lord! All the celestials ordain that time for the killing of Rāvaṇa has arrived now. It would be best if you unleash your *astraṃ* of Grandfather Lord Brahmā.

The history of Rāma's supernatural missile weapon is narrated in the following verses:

History of Rāma's super natural Missile

ततः संस्मारितो रामस्तेन वाक्येन मातलेः |

tataḥ saṃsmārito rāmastena vākyena mātaleḥ

जग्राह स **शरं दीप्तं** निःश्वसन्तमिवोरगम् || VR6.108.3

jagrāha sa śaraṃ dīptaṃ niḥśvasantamivoragam

यं तस्मैन् प्रथमं **प्रादादगस्त्यो भगवानृषिः** |

yaṃ tasmain prathamaṃ prādādagastyo bhagavānṛṣiḥ

ब्रह्मदत्तं महाबाणममोघं युधि वीर्यवान् || VR6.108.4

brahmadattaṃ mahābāṇamamoghaṃ yudhi vīryavā

ब्रह्मणा निर्मितं पूर्वमिन्द्रार्थममितौजसा |

brahmaṇā nirmitaṃ pūrvamindrārthamamitaujasā

दत्तं सुरपतेः पूर्वं त्रिलोकजयकाङ्क्षिणः // VR6.108.5

dattaṃ surapateḥ pūrvaṃ trilokajayakāṅkṣiṇaḥ

Reminded by Mātali, the brave Rāma then took up the *astra* of Grandfather Lord Brahmā, which looked like a blazing arrow and a hissing snake. This *astra* was bestowed by Grand sage Agastya to Rāma. The *astra* was most powerful and unfailing in battle. It was constructed (*nirmitaṃ*) long ago by Lord Brahmā, who had given this weapon to Indra, the King of celestials, who wanted to conquer the three worlds.

Lord Brahmā constructed the supernatural missile weapon confirming its terrestrial origin. The following verses describe in coded language the construction, materials and capacity of this weapon:

Description of the Rāma's super natural Missile

यस्य वाजेषु पवनः फले पावकबास्करौ |

yasya vājeṣu pavanaḥ phale pāvakabāskarau

शरीरमाकाशमयं गौरवे मेरुमन्दरौ || VR6.108.6

śarīramākāśamayaṃ gaurave merumandarau

जाज्वल्यमानं वपुषा सुपुङ्खं हेमभूषितम् |

jājvalyamānaṃ vapuṣā supuṅkhaṃ hemabhūṣitam

तेजसा सर्वभूतानां कृतं भास्करवर्चसम् || VR6.108.7

tejasā sarvabhūtānāṃ kṛtaṃ bhāskaravarcasam

सधूममिव **कालाग्निं** दीप्तमाशीविषोपमम् |

sadhūmamiva kālāgniṃ dīptamāśīviṣopamam

नरनागाश्ववृन्दानां भेदनं क्षिप्रकारिणम् || VR6.108.8

naranāgāśvavṛndānāṃ bhedanaṃ kṣiprakāriṇam

द्वाराणां परिघाणां च गिरीणां चापि भेदनम् |

dvārāṇāṃ parighāṇāṃ ca girīṇāṃ cāpi bhedanam

The missile had the wind in its feathers. Its tip was powered by fire and sun energies. Its body was made of the ether-like material (*śarīramākāśamayaṃ*), which was strong like Mounts Meru and Mandara. Its material had been created (*kṛtaṃ*) in the asteroid bodies (*tejasā*) by the combination of all the elements (*sarvabhūtānāṃ*) through solar heat (*bhāskaravarcasam*). It was adorned with gold (*hemabhūṣitam*) and had superbly designed feathers (*supuṅkhaṃ*), and it was swift in action like a gleaming venomous snake. It was like a smoking fire of great destruction and could mass kill men, elephants and horses. It could demolish gates, break iron bars (*parighāṇāṃ*), and penetrate mountains.

Following the prescribed rite, immensely brave Rāma released the supernatural missile weapon from his bow, and it struck upon the chest of Rāvana:

Rāma used a supernatural missile that killed Rāvana

This painting illustrates the scene after a tremendous fight, in which Rāma shoots off Rāvaṇa's heads with his arrows only to see them grow again. Reminded by his charioteer, Rāma used a missile

weapon created by Lord Brahmā. This weapon pierces Rāvaṇa's breast, and he falls lifeless from his chariot.

(Image Credit: Rana Jagat Singh of Mewar, British Library).

स **वज्र** इव दुर्धर्षो वज्रिबाहुविसर्जितः |

sa vajra iva durdharṣo vajribāhuvisarjitaḥ

कृतान्त इव चावार्यो न्यपतद्रावणोरसि || VR6.108.17

kṛtānta iva cāvāryo nyapatadrāvaṇorasi

स विसृष्तो **महावेगह्** शरीरान्तकरः **शरः** |

sa visṛṣto mahāvegah śarīrāntakaraḥ śaraḥ

च्छेद हृदयं तस्य रावणस्य दुरात्मनः || VR6.108.18

ccheda hṛdayaṃ tasya rāvaṇasya durātmanaḥ

रुधिराक्तह् स वेगेन शरीरान्तकरः शरः |

rudhirāktah sa vegena śarīrāntakaraḥ śaraḥ

रावणस्य हरन् प्राणान् **विवेश धरणीतलम्** ||VR6.108.19

rāvaṇasya haran prāṇān viveśa dharaṇītalam

That super missile (*śaraḥ*), inviolable like the thunderbolt (*vajra*) hurled by the arms of Indra and inescapable as fate, struck upon Rāvaṇa 's chest. That lethal super missile arrow, released with tremendous power, tore off the heart of that evil-minded Rāvaṇa. After taking away the life of Rāvaṇa, the arrow-like missile drenched in blood, the Earth.

The above texts reveal that the supernatural missile weapon was designed like an arrow (*śaraṃ*) with nicely fletched feathers (*supuṅkhaṃ*) and decorated with gold (*hemabhūṣitam*). The body (*śarīram*) and feathers (*puṅkhaṃ*) of the missile were made of space (*ākāśamayaṃ*). Space contains visible as well as invisible matters. Matter in the space that emits no light or energy and hence is invisible is called dark matter. Their proportion in the Universe is as follows:

Normal Physical Matter Baryonic –Matter Protons, neutrons, atomic nuclei ~5% dark of the Universe	Dark Matter Non-baryonic Matter Hypothetical particles ~27% of the Universe

We have surmised that the supernatural missile might be a physical-visible object or a non-

physical-invisible object and endeavoured to decode the text to find the main characteristics of its construction material, as discussed below:

Supernatural Missile Weapon made of Visible Material

The supernatural missile was a physical and visible object. The term *ākāśa* is derived from the root *kāśa,* which means "to shine". We can therefore consider that missile was made of normal visible physical material. Energized by *pavana* (Wind-god) and *pāvaka* (Fire-god), the missile weapon had a capacity for swift motion and to strike its target at high speed. The weapon's description suggests that the supernatural missile must have been made of lightweight material (*ākāśa*, *pavana,* and *kṣiprakāriṇam*, *mahāvega*), which had a very high strength like that of Mounts (*gaurav merumandarau*, *vajra*). It can be inferred that the missile weapon was made of some unknown superalloy material, which had high shininess (*śaraṃ dīptaṃ. jājvalyamānaṃ*), low density and high strength. This superalloy material was naturally formed (*kṛtaṃ*) in some asteroid body (*tejasā*) through a complex combination of all the elements (*sarvabhūtānāṃ*) and the solar heat (*bhāskaravarcasam*). We can say that the supernatural missile was made from a lustrous superalloy material with the highest strength-to-weight ratio, and it was naturally constituted by alloying many elements in some asteroid bodies. Vālmīki Rāmāyaṇa provides advanced concepts of making the complex alloys with very high strength-to-weight ratios by alloying with many elements in space.

Modern scientists and metallurgists are continuously researching to develop new light metal alloys with high strength-to-weight ratios alloying with many elements such as copper, zinc, magnesium, manganese, silicon, calcium, rare earth metals, and zirconium for aerospace and automotive applications. Current research focuses on the element Magnesium (density 1.738 g/cm^3), which is lighter than Aluminum (density 2.70 g/cm^3). A new Magnesium Alloy designated as AXMZ1000, having excellent formability comparable to the aluminium sheet, has been developed by alloying magnesium with aluminium, calcium, manganese and zinc. This new alloy is about 33% lighter and 1.5 to 2.0 times stronger than the aluminium alloys. **Vālmīki Rāmāyaṇa gives a clue to Modern science that it might be possible to produce new light metals superalloys in space with high strength-to-weight ratios by adding many more elements than possible on the Earth for aerospace applications.**

Missile Weapon made of Invisible Material

Alternatively, *ākāśa* may be inferred as a non–physical and invisible mystic matter which can pervade or penetrate everything. Invisible materials are extremely hard to spot. For this reason, the missile had been made spottable (*jājvalyamānaṃ*) by adorning it with gold (*hemabhūṣitam*). This inference suggests that the supernatural

missile might have been made of Dark Matter, which is invisible, lightweight and all-pervading. The phrase *tejasā sarvabhūtānāṃ kṛtaṃ bhāskaravarcasam* reveals that the invisible dark matter was created (*kṛtaṃ*) by coalescing the physical matter of stars and galaxies (*tejasā sarvabhūtānāṃ*) in the fire of great destruction (*kālāgniṃ*) of the early Universe (symbolized by Brahmā). Vālmīki Rāmāyaṇa may also have vital clues related to the high sciences of Dark Matter, which is a hot puzzling subject of modern science. Modern science understands that the Dark Matter had formed in our early Universe after the Big Bang. Invoking the weapon by mantras and deities might be a part of secret knowledge to manipulate the Dark Matter into different shapes and objects and energize them as a weapon. Traditional scholars and scientists should further study if the mystic astras (weapons) described in our heritage Sanskrit texts had been made of Dark Matter.

A brief review of the two types of materials of the supernatural missile is given below:

ASTRA was a visible weapon	ASTRA was an invisible weapon
The *astra* (missile weapon) was made of the normal physical matter (baryonic matter made of atomic building blocks), which was unknown super material with the following characteristics: It was low-weight (low–density) It was lustrous (*jājvalyamānaṃ*) and visible to the naked eye. It was also very hard and high strength like mounts (*gaurave merumandarau*). It could break iron bars and penetrate hard rocks. It was constituted (*kṛtaṃ*) in some asteroid body (*tejasā*) through a complex combination of all the elements (*sarvabhūtānāṃ*) and the solar heat (*bhāskaravarcasam*) in the Early Universe	The *astra* (missile weapon) was made of invisible mystic matter, which might be dark matter (non-baryonic matter made of unknown particles) with the following characteristics: It was low-weight (low–density) It was invisible to the naked eyes. It was made spottable (*jājvalyamānaṃ*) by its gold decoration (*hemabhūṣit*) It could penetrate any physical matter. It was created (*kṛtaṃ*) by coalescing the physical matter (*tejasā sarvabhūtānāṃ*) in the fire of great destruction (*kālāgniṃ*) of the stars and galaxies in the Early Universe

CONCLUDING REMARKS

The two wonder objects, Lord Śiva's bow and Rāma's supernatural missile weapon described in the Vālmīki Rāmāyaṇa, reveal advanced concepts of two super metallic materials constituted and shaped in space. Whereas Lord Śiva's bow was made of super heavy metallic material, Rāma's supernatural missile was made of super-light material with high strength. Both supermaterials had terrestrial origins. Thus, the clues of advanced metallurgy revealed in the ancient text can inspire modern science to manufacture new metallic alloys and their objects in space, which cannot be produced on Earth. The harshness of space can be the perfect constitution zone for making unique superalloys. In space, microgravity can allow materials to mix homogeneously irrespective of differences in their densities without any stirring and container walls. Also, a nearby ultrahigh vacuum can help the alloys to form without impurities. The concept involves producing superalloys and 3D manufacturing of metallic objects in space. While most of the metal technologies of the past may not be relevant today, revolutionary concepts of the space metallurgy revealed in the ancient text of Vālmīki Rāmāyaṇa should inspire modern science. It may be possible to make unique new alloys in space or improve on alloys already developed on the Earth in the coming times. The International Space Station (ISS) may soon demonstrate space metallurgy and its manufacturing capability. Space manufacturing metals and alloys and forming them into desired objects would become a future industry.

REFERENCES

1. Rao HanUmānta Desiraju and Murthy K.M.K., Valmiki Rāmayana, (2008) https://www.valmikirāmayan.net
2. Bhaktivedanta Base: https://vedabase.io/en/library/sb/

*** Principal Consultant,**
DASM Metallurgical Consultancy,
Brampton, Canada
**** Advisor,**
Pradeep Metals Limited, Rabale,
Navi Mumbai, India

3 आधुनिक आलोचना में हिंदी उपन्यास की विशेषताएँ

डॉ. मैरम्बी नुरोना

आलेख का सार

आधुनिक समाज में उपन्यास का विकास न केवल वास्तविकता की अधिक सूक्ष्म और गहरी समझ की गवाही देता है, बल्कि समग्र रूप से भारतीय लोगों के विचारों में बदलाव का भी प्रमाण है। हिंदी लेखकों के लिए, उपन्यास की शैली जीवन स्थितियों की अभिव्यक्ति के विविध रूपों को बेहतर ढंग से समझने, समाज के विकास के नियमों में किसी के दिल में गहराई से प्रवेश करने का एक महत्वपूर्ण तरीका बन गई है।

आधुनिक उपन्यास भारत में एक पसंदीदा लोक शैली बन गया है, क्योंकि इसमें लेखक न केवल अतीत और भविष्य को दर्शाते हैं, बल्कि अपने देश और उनके मेहनतकश लोगों की वर्तमान वास्तविक स्थिति का भी वर्णन करते हैं। इसकी विषय वस्तु की विस्तृत श्रृंखला और विविधता, इसकी बहुमुखी प्रतिभा, नवीनता और इस शैली के अन्य पहलू शोधकर्ताओं को वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए एक विस्तृत क्षेत्र के साथ छोड़ देते हैं।

उपन्यास के विषय का चुनाव किसी चीज तक सीमित नहीं है। मानव जीवन की तरह, यह अनंत, विस्तृत और विविध है। हालाँकि, इन गुणों के साथ, उपन्यास की एक और विशेषता है - यह हमेशा आधुनिक होता है। समय के मोड़ के साथ-साथ व्यक्ति की चेतना और सोच में हो रहे परिवर्तन और मानवीय संबंधों में - सब कुछ उपन्यास में परिलक्षित होता है।

एक उपन्यास के रूप में कला का काम सुधार के इस पथ पर कोई सीमा नहीं है, और नवाचार और नवीनता इसमें हस्तक्षेप नहीं करेगी। यह उपन्यास में मौजूद नवीनता है जो नई खोजों के लिए प्रेरणा बन जाएगी, और बदले में, वास्तविकता कॉल करती है और उपन्यासकार को एक नई प्रमुख शैली की तलाश करने के लिए मजबूर करती है।

आधुनिक साहित्य में बड़े महाकाव्य की उपस्थिति एक प्राकृतिक घटना है, जो साहित्य की शैली प्रणाली के विकास की परंपराओं के अनुरूप है। सबसे पहले, यह रचनात्मक बुद्धिजीवियों की कलात्मक चेतना में बदलाव की गवाही देता है। भारतीय परिस्थितियों में उपन्यास का विकास ना केवल वास्तविकता की अधिक सूक्ष्म और गहरी समझ का सूचक है, बल्कि समग्र रूप से भारतीय लोगों के विचारों में हुए परिवर्तनों का भी संकेत है। हिंदी लेखकों के लिए, उपन्यास की शैली जीवन स्थितियों की अभिव्यक्ति के विविध रूपों की व्यापक समझ और समाज के विकास के पैटर्न में उनके सार में गहरी अंतर्दृष्टि के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण बन गई है।

यह कोई संयोग नहीं है कि प्राच्यविद् सहित प्रत्येक साहित्यिक शोधकर्ता, पूर्व के एक विशेष साहित्य की शैली की समस्याओं को छूते हुए, सबसे पहले उपन्यास की शैली और उसके मूल का विश्लेषण करता है, क्योंकि यहाँ "उपन्यास अग्रणी शैली बन जाता है, पूर्व के देशों में न केवल साहित्यिक, बल्कि सामाजिक जीवन के विकास

को भी प्रभावित करता है" [1, 190]।

इस संबंध में, उपन्यास की शैली के सबसे बड़े शोधकर्ता एम.एम. बख्तिन : उपन्यास आधुनिक समय के साहित्यिक विकास का अग्रणी नायक बन गया है क्योंकि यह एक नई दुनिया के गठन की प्रवृत्तियों को सबसे अच्छी तरह व्यक्त करता है, क्योंकि यह इस नई दुनिया से पैदा हुई एकमात्र शैली है और इसके साथ सह-स्वाभाविक है।" सब कुछ में साहित्य के सिद्धांत और इतिहास के अध्ययन के विषय के रूप में उपन्यास का यह असाधारण महत्व है" [3, 451]।

भारतीय साहित्य के शोधकर्ता 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध को उपन्यास के जन्म का समय एक अलग शैली के रूप में मानते हैं। "सोवियत इंडोलॉजिस्ट इस बात से सहमत प्रतीत होते हैं कि उपन्यास की शैली 19 वीं शताब्दी में भारत में दिखाई दी। कुछ नया, "रूसी प्राच्यविद् एस.डी. सेरेब्र्यानीय। एक अन्य रूसी इंडोलॉजिस्ट ए.एस. सुखोच्योव ने उर्दू साहित्य पर अपनी पुस्तक में लिखा है कि "उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में। पत्रकारिता और उर्दू साहित्य के लिए एक नई शैली - उपन्यास - पूरी आवाज में खुद को घोषित करें" [11, 3]। 1974 के एक वैज्ञानिक लेख में, उन्होंने यह भी बताया: "भारतीय साहित्य में पहला उपन्यास छपे एक सदी से थोड़ा अधिक समय बीत चुका है" [11, 19]।

आधुनिक उपन्यास भारत में एक पसंदीदा लोक शैली बन गया है, क्योंकि इसमें लेखक ना केवल अतीत और भविष्य को दर्शाते हैं, बल्कि अपने देश और मेहनतकश लोगों की वर्तमान वास्तविक स्थिति का भी वर्णन करते हैं। भारतीय शोधकर्ता रामचंद्र तिवारी के अनुसार, "उपन्यास लोगों की पसंदीदा गद्य शैली है, और निस्संदेह, यह कई पाठकों को आकर्षित करने में सक्षम है" [14, 3]। इसकी विषय वस्तु की विस्तृत श्रृंखला और विविधता, इसकी बहुमुखी प्रतिभा, नवीनता और इस शैली के अन्य पहलू शोधकर्ताओं को वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए एक विस्तृत क्षेत्र के साथ छोड़ देते हैं। इसकी विषय वस्तु की विस्तृत श्रृंखला और विविधता, इसकी बहुमुखी प्रतिभा, नवीनता और इस शैली के अन्य पहलू शोधकर्ताओं को वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए एक विस्तृत क्षेत्र के साथ छोड़ देते हैं।

"अपने विकास के पथ पर, उपन्यास इतना बना था, लेकिन फिर, यह एक उपन्यास की तरह नहीं दिखता" [15, 14]। यह उदाहरण इस तथ्य के समान है कि नायक बिहारीलाल की सुंदरता इतनी परिवर्तनशील है कि केवल एक "कुशल कलाकार" ही उसे दिखा सकता है। वाल्टर हेलेन के अनुसार: "मैं उपन्यास के अर्थ की व्याख्या करने की कोशिश नहीं करूंगा, क्योंकि जहां दूसरे सही थे, मेरे लिए सफल होना असंभव है" [16, 13]।

यहाँ श्रीनिवास अयंगर के निम्नलिखित कथन पर ध्यान देना आवश्यक है, जिसे उन्होंने 1960 के दशक की शुरुआत में व्यक्त किया था: "एक साहित्यिक घटना के रूप में उपन्यास हमारे युग में भारत में उत्पन्न हुआ। महाकाव्य, गीत, नाटक, कहानी और दंतकथाओं के पूर्वज आदरणीय हैं जिनकी आयु की गणना सदियों में की जाती है, लेकिन उपन्यास, अर्थात् कल्पना (prose fiction) के लंबे और पूर्ण कार्य ने पिछली शताब्दी में ही भारत में जड़ें जमा लीं। बेशक, कोई इस बात पर आपत्ति कर सकता है कि माना कि

कादंबरी और सुबंधु की वासवदत्त जैसी संस्कृत की कृतियाँ भी उपन्यास हैं, लेकिन वास्तव में यह नाम उल्लिखित कार्यों के लिए उपयुक्त नहीं है, जो इसके अलावा, अपनी तरह की एक उत्कृष्ट कृति बनी रही। इस तरह के नाम के योग्य एक उपन्यास (properly so-called) केवल 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में प्रकट होता है, जब भारत की संस्कृति पर पश्चिम के प्रभाव ने, अन्य बातों के अलावा, क्षेत्रीय में लिखित गद्य के विकास के लिए नेतृत्व किया [भारतीय] भाषाएं - पहले केवल कार्यात्मक, उपयोगितावादी गद्य और फिर और कलात्मक" [देखें: 9, 97]।

अंग्रेजी में «fiction» ("फिक्शान") शब्द का प्रयोग उपन्यास शब्द के पर्याय के रूप में किया जाता है। "फिक्शान" शैली में कुछ शानदार रचनाएँ भी शामिल हैं, लेकिन उनके आधार पर जीवन की सच्चाई का मूल्यांकन करना गलत या सच्चाई से दूर होगा। गद्य की केवल दो विधाएँ - उपन्यास और कहानी (या लघुकथा) - इस कार्य (जीवन की सच्चाई का प्रतिबिंब) को सही और सटीक रूप से करती हैं। एक छोटी कहानी "फिक्शन" («fiction») नहीं हो सकती है, लेकिन एक "फिक्शन" एक छोटी कहानी का कार्य भी नहीं कर सकता है। "जब तक जीवन और सत्य एक कार्य में अभिसरण नहीं करते, जब तक गद्य लेखक इस सत्य को महसूस नहीं करते, एक सच्चा, वास्तविक उपन्यास नहीं बनाया जाएगा" [14, 76]।

उपन्यास के विषय का चुनाव किसी चीज तक सीमित नहीं है। मानव जीवन की तरह, यह अनंत, विस्तृत और विविध है। हालाँकि, इन गुणों के साथ, उपन्यास की एक और विशेषता है - यह हमेशा आधुनिक होता है। समय के मोड़ के साथ-साथ व्यक्ति की चेतना और सोच में हो रहे परिवर्तन और मानवीय संबंधों में - सब कुछ उपन्यास में परिलक्षित होता है।

उपन्यास की एक विशिष्ट विशेषता, जैसा कि पहले ही उल्लेख किया गया है, इसका जीवन सत्य है। जॉर्ज मूर उपन्यास की शैली को निम्नलिखित परिभाषा देते हैं: "जिस सदी में हम रहते हैं, यह उपन्यास है जो अपने सामाजिक परिवर्तनों का सामान्य और सटीक पुनर्गठन है" [8, 47]। जॉर्ज मूर के ये शब्द उपन्यास के सार को दर्शाते हैं। उपन्यास की क्रिया के विषय और समय में परिवर्तन के साथ, इसका कलात्मक परिवर्तन अपरिहार्य है।

वैज्ञानिक और साहित्यिक दृष्टि से लेखकों और शोधकर्ताओं ने उपन्यास को अलग-अलग परिभाषा दी। यहाँ महान लेखकों और वैज्ञानिकों के सामान्य रूप से उपन्यास के अर्थ, लक्ष्य और उद्देश्यों के बारे में और विशेष रूप से हिंदी साहित्य में कुछ कथन दिए गए हैं। उदाहरण के लिए, 20वीं शताब्दी के प्रमुख भारतीय लेखक प्रेमचंद ने उपन्यास को केवल मानवीय छवियों का चित्रण नहीं माना।

एक अन्य प्रसिद्ध भारतीय लेखक, जवाहर सिंह (1911-1987) ने कहा, "मेरे उपन्यासों में मैं स्वयं हूं" ("द पिनेकल: फॉरवर्ड ऑफ वन लाइफ")। यशपाल (1903-1976) ने कहा कि "उपन्यास सामाजिक और मानसिक की तुलनात्मक स्थिति है" [13, 47-74]।

वृंदावनलाल वर्मा के अनुसार रचनाकार को

रचना के संबंध में तटस्थ रहना चाहिए। रामचंद्र तिवारी ने हिंदी उपन्यास के विकास पर अपने अध्ययन में सुझाव दिया है कि उपन्यास का अर्थ "व्यक्ति पर सीधा प्रभाव" [14, 21] में निहित है।

यहां रूसी इंडोलॉजिस्ट ट.ए. दुब्यांस्काया के शब्दों को उद्धृत करना उचित है, हिंदी साहित्य में उपन्यास के योजना, कार्तव्य और विशेष्ताओं के बारे में।

हिंदी साहित्य में उपन्यास की विशेषताओं और भूमिका के बारे में रूसी इंडोलॉजिस्ट त. दुब्यांस्काया के शब्दों को यहां उद्धृत करना उचित है: "... इसे ध्यान में रखा जाना चाहिए कि नए साहित्य में, कला के सभी प्रकार के कार्यों में, यह उपन्यास था जो हमेशा सार्वजनिक जीवन के साथ विशेष रूप से घनिष्ठ संबंधों में रहा है, इसने शिक्षा के प्रसार में योगदान दिया, पाठकों को तैयार किया नए विचारों और घटनाओं की धारणा के लिए, जनमत का गठन किया और, परिणामस्वरूप, राष्ट्रीय विचारधारा के निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई (यह याद करने के लिए पर्याप्त है कि कितने दशकों तक बोनकिमचोंड्रो के उपन्यास से भारत माता का गान, बंदे मातरम्। एबोड ऑफ जॉय, 1882, ने कई दशकों तक भारतीयों को प्रेरित किया)। इस प्रकार, उपन्यास को भारतीय सामाजिक चिंतन के इतिहास पर एक महत्वपूर्ण स्रोत भी कहा जा सकता है" [5, 4]। उपरोक्त सभी ताजिक उपन्यास के लिए भी सही हैं, विशेष रूप से स. ऐनी के उपन्यास और ज. इकरामी द्वारा त्रयी, जो मध्य एशिया में सामंतवाद के युग में ताजिक लोगों के कठिन इतिहास को दर्शाते हैं [10, 63] .

उपन्यास क्या होना चाहिए, इस बारे में उपन्यासकारों की खुद अलग-अलग राय है। इस बारे में कि कैसे प्रसिद्ध दार्शनिक एम.एम. बख्तिन उपन्यास की व्याख्या करते हैं, साहित्यिक आलोचक जी.के. कोसिकोव निम्नलिखित लिखते हैं: "उपन्यास" की शुरुआत संवादात्मक शुरुआत है जिसे साहित्यिक विमान में स्थानांतरित किया गया है। वह "उपन्यास शब्द" का इतिहास, सबसे पहले, "बहुभाषावाद" के सिद्धांत के विकास के इतिहास के रूप में, "संवाद" और "एकालाप", "गद्य" के बीच "कविता" के बीच एक लंबे लेकिन सफल संघर्ष के रूप में खींचता है।", "उपन्यास" के खिलाफ "ईपोस" [6, 21-50]। एम.एम. बख्तिन के लिए उपन्यास एक सामान्य शैली नहीं है ("शैलियों के बीच शैली" नहीं), जिसमें एक निश्चित "कैनन" (एक ही ध्वनि या विभिन्न स्वर दोहराना) है, लेकिन "भाषाओं के आपसी रोशनी का सन्निहित तत्व" [3, 51]।

उपन्यास, अनिवार्य रूप से इस "सक्रिय रूप से बहुभाषी दुनिया" की एक कलात्मक अभिव्यक्ति होने के नाते, एम.एम. बख्तिन की अवधारणा में न केवल नए युग की अग्रणी शैली के रूप में, बल्कि एक ऐसी शैली के रूप में भी है जो अतीत से विरासत में मिली सभी "प्रत्यक्ष" शैलियों को अपनी कक्षा में खींचती है, क्योंकि "यह कक्षा सभी साहित्य के विकास की मुख्य दिशा से मेल खाती है। "

16 वीं - 17 वीं शताब्दी की शुरुआत में पहले "पूर्ण-अक्षर" नमूने दिए जाने के बाद (रब्ले, सर्वेंट्स), संवादात्मक तत्व के अवतार के रूप में उपन्यास ग्रिम्मेलसहॉसेन, सोरेल, स्कार्रोन, फिर

फीलिंडिग, स्टर्न और जीन-पॉल के कार्यों के माध्यम से अपने विकास में गुजरता है, ताकि 19 वीं शताब्दी से शुरू होने से लगभग अविभाजित शासन कर लें। "उपन्यास का मुख्य लक्ष्य जीवन का फोटोग्राफिक चित्रण नहीं है, लेकिन हम एक ऐसी तस्वीर देखेंगे जो और भी अधिक दृश्यमान और जीवन की सच्चाई से भरपूर होगी" [7, 29-30]।

उपन्यास में समय के अनुसार जीवन बदलता है और वास्तविकता का वर्णन ऐतिहासिक काल पर निर्भर करता है, इसलिए व्यक्ति के आंतरिक और बाहरी परिवर्तन समय के साथ जुड़े होते हैं। यह बहुत संभव है कि इस परिवर्तन को स्वाभाविक मानते हुए, लेखक अपने द्वारा वर्णित घटनाओं के प्रति अपना दृष्टिकोण व्यक्त करने की कोशिश नहीं करता है, लेकिन केवल इस बात पर जोर देता है कि यह "उपन्यास का सत्य उपन्यास का इतिहास है" [2, 48] .

वास्तव में, यदि आप उपन्यास के निर्माण के इतिहास को देखते हैं, तो आप यह स्वीकार नहीं कर सकते कि यह हर समय छवि के यथार्थवाद पर आधारित था। रोमांटिक और फंतासी उपन्यासों के युग से लेकर आज के वीर और लघु उपन्यासों तक, इस शैली के गठन और परिवर्तन को देखा जा सकता है।

"हिंदी साहित्य में, उपन्यासों के साथ शुरू करते हुए अनुभव सबसे अच्छा शिक्षक है, चंद्रकांता, बंजर भूमि की कहानी, रंग दरबारी, सूरजमुखी अंधेरे में, "लाल तन को छट", उपन्यास शैली के संपूर्ण विकास का पता लगा सकते हैं और सारांशित कर सकते हैं। श्रमसाध्यता के बावजूद, इस तरह के काम को अंजाम देना समझ में आता है, - डॉ जावर सिंह लिखते हैं [2, 48]।

उपन्यास ने कभी किसी व्यक्ति विशेष की आकांक्षा नहीं की, अपील नहीं की और लोगों के एक अलग समूह के लिए अपील नहीं की। हिंदी साहित्य की गद्य विधाओं के शोधकर्ता डॉ. शिवप्रसाद सिंह के अनुसार, "कभी-कभी उपन्या-सकार एक-दूसरे से दूर रहकर, एक-दूसरे से संबंधित कहानियाँ लिखते हैं, व्यक्ति की चेतना के सुदूर कोनों में घुसकर उसकी मूर्खता और अज्ञानी को उजागर करते हैं, कभी-कभी वे समाज के "सच्चाई" और "झूठ" की समझ को अपने ऊपर ले लेते हैं। इसलिए एम.एम. बख्तिन की प्रसिद्ध थीसिस के अनुसार "उपन्यास में कोई एक भाषा और शैली नहीं है", कि "लेखक (उपन्यास के निर्माता के रूप में) भाषा के किसी भी विमान में नहीं पाया जा सकता है: यह विमानों के चौराहे के स्तर के संगठनात्मक केंद्र में स्थित है", आदि चूँकि लेखक अपने पात्रों को ज्ञान और वस्तुपरक छवि की वस्तु के रूप में नहीं देखता है, बल्कि, इसके विपरीत, "आपसी गलतफहमी" में समान भागीदार के रूप में देखता है [3, 7]।

"समाज" के विपरीत "व्यक्तित्व" का यह मूल्य उन्नयन कुछ शोधकर्ताओं को महाकाव्य के मौलिक, ऐतिहासिक और विशिष्ट विरोध पर उपन्यास के सिद्धांत का निर्माण करने के लिए प्रोत्साहित करता है, हालांकि, इस अर्थ में नहीं कि एम.एम. बख्तिन के अनुसार, लेकिन इस अर्थ में कि महाकाव्य, जैसा कि ज्ञात है, आदर्शों के साथ एक स्वतंत्र और शौकिया व्यक्ति के पर्याप्त संलयन के विचार पर आधारित है, सामूहिक के मूल्य और

नियति, जिसकी ओर से नायक सीधे प्रतिनिधित्व करता है, जबकि उपन्यास, विचाराधीन अवधारणा के अनुसार, इस महाकाव्य एकता के अपघटन की मिट्टी पर, अति-व्यक्तिगत को नष्ट करने की प्रक्रिया में बढ़ता है आदर्श, जो "निषेध" और "मानदंडों" में बदल जाते हैं जो "व्यक्ति के नैतिक और मानसिक विकास", उसके "अपने मानसिक और भावनात्मक हितों" को दबा देते हैं और इसलिए उन्हें दूर करने की आवश्यकता होती है।

"उपन्यास - चाहे हम प्राचीन या आधुनिक समय के उपन्यास के बारे में बात कर रहे हों - शास्त्रीय महाकाव्य को प्रतिस्थापित करने के लिए आता है", और यहां तक कि बाद वाले को "विस्थापित" भी करता है। महाकाव्य और उपन्यास विश्व साहित्यिक प्रक्रिया के विकास में दो क्रमिक चरणों के रूप में प्रकट होते हैं। यही कारण है कि उपन्यास के नायक और उसके आसपास की दुनिया दोनों मौलिक रूप से स्थिर हैं, उनके बीच कोई "वास्तविक बातचीत नहीं है: दुनिया नायक को बदलने में सक्षम नहीं है, यह केवल उसका परीक्षण करता है, और नायक दुनिया को प्रभावित नहीं करता है, अपना चेहरा नहीं बदलता ... और इसका दावा नहीं करता है। नायक वह निश्चित और निश्चित बिंदु है जिसके चारों ओर उपन्यास में हर आंदोलन होता है ... ऐसे तैयार नायक के भाग्य और जीवन की गति कथानक की सामग्री का निर्माण करती है, लेकिन व्यक्ति का चरित्र, उसका बदलो और बनो, साजिश मत बनो" [4, 16]।

वास्तव में, उपन्यास "शताब्दी के संवाद" के लिए प्रयास करता है - सत्य को समझने के लिए, यह नए विचारों, दृष्टिकोणों को पकड़ता है, और वास्तविकता को व्यक्त करने के लिए नई शैलियों और रूपों को चुनता है। इसलिए, हम कह सकते हैं कि "आज उपन्यास को किसी सिद्ध तथ्य से जोड़ना मुश्किल हो गया है, इसे कुछ सीमाओं के भीतर रखना मुश्किल है। वह, अर्थात् उपन्यास, यातना और समकालीन वास्तविकता का अध्ययन करता है, उसे समझाता है, दिखाता है और पाठक को प्रस्तुत करता है, और इस कारण से मतभेद पैदा होता है। यदि हम अपने आप को अतीत की वास्तविकता से मुक्त नहीं करते हैं, तो हम अपना नया संवाद नहीं खोज पाएंगे, नई भाषा की खोज के लिए परिस्थितियां नहीं बनेंगी, हम नया अनुभव नहीं देखेंगे, और उपन्यास जीत जाएगा आधुनिकता के बारे में बोलते हुए भारतीय शोधकर्ता इंद्रनाथ मदान ने जोर देकर कहा, 'आधुनिक वास्तविकता को व्यक्त करने की ताकत हासिल करने में सक्षम नहीं है। उपन्यास और समकालीन लेखक [12, 82]।

हिंदी साहित्य के विद्वान शिवप्रसाद सिंह द्वारा संचालित उपन्यास की अवधारणा के एक अध्ययन से आम तौर पर स्वीकृत और आम तौर पर मान्यता प्राप्त विशेषताओं का पता चलता है:

1. उपन्यास, गद्य की एक शैली के रूप में, तुलना के एक महान प्रभाव के आधार पर बनाया गया है;
2. उपन्यास वास्तविक जीवन, वास्तविकता पर लेखक के दृष्टिकोण और उसकी वास्तविक छवि पर आधारित है - रूमानियत से अलग चीजें;

3. उपन्यास एक निश्चित कहानी और कुछ छवियों को विस्तारित रूप में दर्शाता है, जिसमें कार्रवाई की एक बड़ी समय अवधि होती है;
4. उपन्यास पर पाठक का ध्यान लेखक के कौशल पर निर्भर करता है;
5. लेखक अपने उपन्यास में किसी न किसी रूप में रहता है, और उपन्यास के अंदर और बाहर से लेखक का अवलोकन ही इसके निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाता है [15, 76]।

इस संबंध में विशेष महत्व के कई बयान हैं जो 18 वीं शताब्दी में एक नए प्रकार के उपन्यास के निर्माण के साथ थे। यह श्रृंखला हेनरी फील्डिंग द्वारा टॉम जोन्स में उपन्यास और उसके नायक की चर्चा के साथ शुरू होती है। इसकी निरंतरता वीलैंड की अगाथॉन की प्रस्तावना है, और इसकी सबसे महत्वपूर्ण कड़ी ब्लैंकेनबर्ग का उपन्यास के बारे में अनुभव उपन्यास पर एक निबंध है।

इस श्रृंखला का पूरा होना, संक्षेप में, उपन्यास का सिद्धांत है, जिसे बाद में हेगेल ने दिया। इन सभी कथनों के लिए, उपन्यास के निर्माण को इसके आवश्यक चरणों ("टॉम जोन्स", "एगटन", "विल्हेम मिस्टर") में दर्शाते हुए, इस शैली के लिए निम्नलिखित आवश्यकताएं विशेषता हैं:

- उपन्यास इस अर्थ में "काव्यात्मक" नहीं होना चाहिए कि कल्पना की अन्य विधाएं काव्यात्मक हैं;
- उपन्यास का नायक या तो महाकाव्य या शब्द के दुखद अर्थों में "वीर" नहीं होना चाहिए; उसे सकारात्मक और नकारात्मक दोनों लक्षणों को जोड़ना चाहिए, दोनों निम्न और उच्च, मजाकिया और गंभीर दोनों;
- नायक को तैयार और अपरिवर्तनीय के रूप में नहीं दिखाया जाना चाहिए, बल्कि जीवन से बनने, बदलने, पोषित होने के रूप में दिखाया जाना चाहिए;
- उपन्यास आधुनिक दुनिया के लिए वही बनना चाहिए जो प्राचीन दुनिया के लिए महाकाव्य था (यह विचार ब्लैंकेनबर्ग द्वारा पूरी स्पष्टता के साथ व्यक्त किया गया था और फिर हेगेल द्वारा दोहराया गया था)।

उपरोक्त विशेषताओं के अलावा, उपन्यास में अन्य विशेषताएं भी हो सकती हैं, क्योंकि उपन्यास जैसे कला के काम की इस पथ पर कोई सीमा नहीं है, और यह नवाचार और नवीनता में हस्तक्षेप नहीं करेगा। यह उपन्यास में मौजूद नवीनता है जो नई खोजों के लिए प्रेरणा बन जाएगी, और बदले में, वास्तविकता कॉल करती है और उपन्यासकार को एक नई प्रमुख शैली की खोज करने के लिए मजबूर करती है।

संदर्भ सूची:

1. Asozoda KH. Sadik Khidayat I ego tvorcheskiy mir. - Dushanbe: Donish, 2007. 155 p.
2. Balin V.I. Literatura Hindi / V/I/ Balin. // Kratkaya istiriya literature Indii. L.: Leningradskiy Universitet, 1974. 147 p.
3. Bakhtin M.M. Epos I roman. (O metodoloii issledovaniya romana./ M.M. Bakhtin. // Voprosi literaturi. – M.: Khud. lit-ra, 1970. – № 51. P. 95 -122.

4. Bakhtin M.M. Voprosi literature I istetiki. – M.: Khud. lit-ra, 1975. 504 p.
5. Dubyanskays T.A. Razvitiye romana Hindi v konce X1X-ptrvoy treti XX v.; dissertasiya kandidata filologicheskikh nauk. – M., 2008. 214 p.
6. Kosikov G.K. Problemi janra v literature srednevekovya // Dialog. Karnaval. Khronotop. – 1993. – №1(2). P. 21-51.
7. Miriam, Allot. Novelists on the Novels' / Allot M. − New York, 1956. 325 c.
8. Mur DJ. Priroda moralnoy filosofii [I drugie proizvedeniya] / Prtdislovie A.F. Gryaznova I L.V. Konovalovoy; Per. s ang., sost. I prim. L.V. Konovalovoy. – M.: Respublika, 1999. 351 p.
9. Serebryaniy S.D. Roman v indiyskoy culture Novogo vremeni.– M.: Rossiysk. gos. gumanit. un-t, 2003. 216 p.
10. Solekhov Sh. Roman v Tajikskoy literature XX veka: (problema formiroveniya janra). – Dushanbe: Donish, 2011. 311 p.
11. Sukhachoy A.S. Ot dastana k romanu. – M.: Nauka, 1971. 245 p.
12. इंद्रनाथ मदन, आधुनिक और हिंदी उपन्यास, दिल्ली: रजकमाल प्रकाशन, 1981. 158 प.
13. जवहार सिंह, हिंदी के अंचालीक उपन्यासों की शिल्प-विधी, दिल्ली: नेशनल प. हाउस, 1986, 311 प.
14. रामचांद तिवारी, हिंदी उपन्यास, वराणसी: विश्विद्यालय प्रकाशन, 2006. 204 प.
15. सिंह शिवप्रसाद, अनचालिक और अधुनिक्ता, इलाहाबाद: लोक भारती, 1986, प. 162.
16. यादव रजेंद्रा, सारा अकाश. दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन, 2008, 207 प.

स्वतंत्र लेखन,
ताजिकिस्तान

4

उज़्बेकिस्तान में हिन्दी भाषा और साहित्य

प्रो. उल्फ़त मुहिबोवा[1]
गुल्योरा शेरमातोवा[2]

उज्बेकिस्तान में हिंदी भाषा का अध्यापन और हिंदी के प्रसिद्ध विद्वान : 1947 से उज्बेकिस्तान में हिंदी भाषा और साहित्य पढ़ाया जा रहा है। तो यह भारत की स्वतंत्रता के बराबर है। इस वर्ष भारतीय विभाग की 75वीं वर्षगांठ एक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन के आयोजन के साथ मनाई जाएगी। अब तक हमारे भारत विद्या विभाग ने एक हज़ार से अधिक विशेषज्ञों को तैयार किया हैं। इनमें प्रमुख राजनेता, राजदूत, मंत्री, शिक्षाविद, प्रोफेसर, अनुवादक और विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वाले अन्य कर्मी शामिल हैं। राजदूतों के बीच, हमारे गुरु फतीख तेशाबायेव, सूरत मिरकासिमोव और ताशमिरज़ा खोलमिरज़ायेव के नाम विशेष उल्लेखीय हैं, जिन्होंने उज़्बेकिस्तान के विदेशों के साथ कूटनीतिक संबंधों की उन्नति में बड़ा योगदान दिया। उनमें से विशेष हैं फतीख तेशाबायेव उन्होंने "सेईद अहमद खान के सामाजिक-दार्शनिक विचार" विषय पर अपना पीएच.डी. किया। फिर सरकारी काम में लग गये और काफी ऊंचे पदों में काम किया। सन् 1966-69 तक उज़बेक विज्ञान अकादमी के पूर्वी देशों में सामाजिक-दार्शनिक विचाधाराएं नामक विभाग के अध्यक्ष रहे। सन् 1969-1973 तक भारत में सोवियत संघ के राजदूतावास में अनुवादक के रूप में काम किया। सन् 1979- 1984 तक बम्बई में स्थित सोवियत सांस्कृतिक केंद्र के डाईरेक्टर रहे। सन् 1993-1996 के सालों में उज़बेकिस्तान के अमरीका में राजदूत रहे। सन् 1997-1999 सालों में उज़बेकिस्तान का इंग्लंड में राजदूत रहे। सन् 2000 से संयुक् राष्ट्र संघ में उज़बेकिस्तान के प्रतिनिधि के रूप में काम करने लगे।[1]

कई वर्षों तक भारतविद्या विभाग के अध्यक्ष रहे असोसिएट प्रो. **र. गुल्यामोवा**[2] ने विष्णु प्रभाकर के कृतित्व पर अपना पीएच.डी. किया। वे स्नातक के रूप में चार साल तक हमारे समूह में हिंदी भाषा और साहित्य पढ़ाया। आजकल उनकी बेटी मेरी शागिर्द है जो अपनी माता जी का काम आगे बढ़ाकर विष्णु प्रभाकर के संस्मरणों पर अपना पीएच.डी. कर रही है।

दूसरा हमारे उस्ताद **सूरत मिरकासिमोव,** जो कई बार भारत में उज्बेकिस्तान के राजदूत रहे, आजकल हमारे विश्वविद्यालय के अंतर्राष्ट्रीय संबंध विभाग में अंतरराष्ट्रीय संबंधों और कूटनीटि से संबंधित विभिन्न विषयों पर विद्यार्थियों को पढ़ा रहे हैं और **ताशमिरज़ा खलमिरज़ायेव,** जो कई बार भारत और पाकिस्तान में उज़बेकिस्तान के राजदूत रहे हैं, आजकल विश्वविद्यालय के दक्षिण एशियाई भाषाओं के विभाग में एम.ए. के विद्यार्थियों को भाषा और साहित्य पढ़ा रहे हैं। रुचि की बात यह है कि फातीह तेशाबायेव, ताशमीरज़ा हालमिरज़ायेव और रानो गुल्यामोवा सन् 1961 में दस महीने की भाषा इंटर्नशिप के

---

[1] Востоковеды Узбекистана. Ташкент, 2005. С. 268. (उज़्बेकिस्तान के ओरिएंटलिस्ट, ताश्कंद, 2005. पृ. 268)

[2] वही किताब, -पृ.166.

लिए उज्बेकिस्तान के पहले छात्र के रूप में भारत गए थे। इस यात्रा के दौरान, उन्हें भारत के प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू जी से मिलने और उनके साथ बात करने का सौभाग्य मिला था।

(*दाईं ओर से त.खलमिरज़ायेव, ज.नेहरु जी, र. गुल्यामोवा, फ. तेशाबायेव*)

ये तीनों महान भारतविद् मेरे गुरु जी रहे जिन्होंने मुझे हिंदी भाषा, साहित्य, दर्शनशास्त्र, मौखिक भाषा जैसे विषयों को पढ़ाया।

मेरे एक और अध्यापक थे जिनका नाम संसार के हर एक भारतविद्या केंद्र के विद्वान जानते है, वे हैं प्रो. **आज़ाद शामातोव।** वे कई वर्षों तक भारतीय भाषाओं के विभाग का अध्यक्ष रहे। आज़ाद शामातोव जैसा इंडोलॉजिस्ट उज़्बेकिस्तान में एकलौते हुए। भारत के बारे में उनकी जानकारी बहुत ही व्यापक थी। हमारे शिक्षक ने स्वतंत्र रूप से न केवल हिंदी बल्कि उर्दू, बंगाली, पंजाबी भाषाएं तथा दक्षिण भारतीय भाषाएँ - मराठी, मलयालम, तेलुगु, कन्नारा जैसी भाषाएं भी सीखी थी। वे हिंदी की पश्चिमी और पूर्वी - दोनों बोलियों में पारंगत थे और हमारे समूह को हिंदी व्याकरण, हिंदी की बोलियाँ और अनुवाद कला जैसे विषयों को पढ़ाते थे। हमारे विभाग में हिंदी के लिये अपना जीवन अर्पित किये अध्यापक बहुत हैं जिनमें से प्रत्येक का अपना हिंदी भाषा या साहित्य से संबंध शोध कार्य का विषय है। वे सभी कई पाठ्यपुस्तकें और मोनोग्राफ साथ ही साथ बहुत सारे वैज्ञानिक लेख भी लिखते रहते हैं।

उज्बेकिस्तान में हिंदी भाषा और साहित्य का एक कुशल भारतविद् **तमारा खोदजायेवा** हैं।[3] तमारा जी अमृता प्रीतम के गद्य पर अपना पीएच.डी. किया। उस समय अमृता प्रीतम जी उज्बेकिस्तान में आयोजित लेखकों के सम्मेलन में ताशकंद पधारी थीं और प्रसिद्ध उज़्बेक कवियत्री जुल्फिया खानुम से मुलाकात की। तभी से उनके बीच दोस्ती का बंधन पैदा हुआ। बाद में भी इन दोनों के बीच पत्र व्यवहार बना रहा। इसके बाद तमारा जी ने अपना वैज्ञानिक काम उज़्बेक-भारतीय साहित्यिक संबंधों के इतिहास की दिशा में बदला। इस विषय पर काम करते-करते उन्होंने इस विषय पर दो मोनोग्राफ प्रकाशित किए। तमारा जी भारतीय साहित्य पर कुल आठ मोनोग्राफ और ग्यारह पाठ्यपुस्तकों की लेखिका हैं।

हमारी एक और वरिष्ठ शिक्षिका **शीरीन जलिलोवा** हैं[4], जिन्होंने भारतीय लोगों की परंपराओं, हिंदी भाषा की शब्दावली और नृवंशविज्ञान जैसे क्षेत्रों में वैज्ञानिक अनुसंधान किया है। शीरीन जी प्राचीन भारतीय लोक रीति-रिवाजों, रिश्तेदारी से संबंध शब्द, त्योहारों, सैद्धांतिक हिंदी व्याकरण के एक मजबूत विशेषज्ञ हैं। उन्होंने इस विषय पर कई मोनोग्राफ प्रकाशित किए हैं।[5] उन्होंने नृवंशविज्ञान के विषय का

[3] वही किताब, पृ. 301

[4] वही किताब, पृ. 171

[5] Қадимги ҳинд маданияти хрестоматияси.

अध्ययन करने के लिए कई बार भारत का दौरा किया। आजकल विभाग में बी.ए. और एम.ए. के विद्यार्थियों को हिंदी शैलीविज्ञान, बोलीविज्ञान और भाषा का इतिहास जैसे विषय पढ़ाते हैं। हिन्दी भाषा के एक अन्य युवा विद्वान है डॉ. **सिराजुद्दीन नूरमातोव** । सिराजुद्दीन नूरमातोव प्रो. आ.शामातोव के शिष्य हैं और उसने हिंदी में संख्या श्रेणी विषय पर वैज्ञानिक शोध करके पीएच.डी. की डिग्री प्राप्त की और इस शोध कार्य को मोनोग्राफ के रूप में प्रकाशित किया। सिराजुद्दीन नूरमातोव कई बार भारत और अन्य देशों की वैज्ञानिक यात्राओं पर गए हैं । एक अन्य युवा भारतविद् गुल्योरा शेरमातोवा हैं। वह उपरोक्त डॉ. रानो गुलियामोवा की बेटी हैं । बह विश्वविद्यालय में हिंदी भाषा और साहित्य पढ़ाती हैं । ग. शेरमतोवा वैज्ञानिक काम में अपनी मां का काम जारी रखीहुई हैं और विष्णु प्रभाकर के कार्यों पर विशेष तौर पर उनके संस्मरणों पर काम करती हैं । वह कई बार भारत जा चुकी हैं और विशेष तौर पर ज.नेहरु विश्वविद्यालय जाती रहती हैं ।

आजकल हमारे दक्षिण एशियाई भाषाओं के विभाग में 17 अध्यापक हिंदी, उर्दू और भारतीय भाषाओं के साहित्य से संबंधित कई विषयों में विद्यार्थियों को पढ़ाते हैं।

मैं, **उल्फ़त मुहीबोवा**[6], ने ताशकंद के ल.ब. शास्त्री नामक हिंदी की विशेष 24वीं नंबर की पाठशाला में हिन्दी सीखना शुरु किया। 1974 में स्कूल से स्नातक होने के बाद मैंने हिंदी भाषा को गहराई से अध्ययन करने के लिए ताशकंद राजकीय विश्वविद्यालय के पूर्वी भाषाओं की फेकल्टी के भारतीय भाषाओं के विभाग में प्रवेश लिया। सन् 1979 में स्नातक होने के बाद मैंने इस विभाग में एक अध्यापिका के रूप में अपना काम शुरू किया। मेरे उन गुरुओं के भारत, हिंदी भाषा और साहित्य पर दिये गये ज्ञान जीवनभर मेरे जीवन में रोशनी डालते रहे। 40 से अधिक वर्षों से मैं भारत प्रेमी उज़्बेक युवाओं को हिंदी भाषा और साहित्य से संबंधित कई विषय पढ़ा रही हूँ। विश्वविद्यालय में पढ़ाने के अलावा हर एक अध्यापक वैज्ञानिक काम में भी लगे रहते हैं। मैंने अपना वैज्ञानिक कार्य अपने उस्ताद प्रो. आ. शामातोव के मार्गदर्शन में लिखा। 17वीं शताब्दी की ब्रज भाषा में लिखी गयी साहित्यिक स्मारक "चौरासी वैष्णवन की बार्ता" पर सन् 1995 को मैंने पीएच.डी. डिग्री प्राप्त की। भक्ति साहित्य पर डॉक्टरेट की थिसिस लिखा और सन 2015 को प्रोफेसर बनी। आज तक उल्फत मुखीबोवा की भारतीय भाषाओं के (हिंदी, उर्दू) साहित्य पर 6 मोनोग्रफी, 4 पाठ्य पुस्तकें, प्राचीन, मध्यकालीन और अधुनिक हिन्दी साहित्य पर सौ से अधिक लेख छपके आये हैं। आज, मैं ताशकंद स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ ओरिएंटल स्टडीज के दक्षिण एशियाई भाषाओं के विभाग के अध्यक्ष के रूप में काम करती हूं।

विश्वविद्यालय में हिंदी भाषा और साहित्य बी.ए., एम.ए. तथा पीएच.डी. के स्तर पर पढ़ाया जाता है। हर साल विद्यार्थीगण हिंदी भाषा और साहित्य पर अपनी थीसिस लिखते हैं। आज तक भाषाशास्त्र और साहित्यशास्त्र के विभिन्न विषयों पर शोध लिखे जा चुके हैं। मेरे मार्गदर्शन में बी.ए. और एम.ए. के विद्यार्थीगण प्राचीन भारतीय साहित्य से रामायण, महाभारत, हितोपदेश, पंचतंत्र जैसे रचनाओं पर तथा 20वीं सदी के भिन्न

Тошкент, 2018. (प्राचीन भारतीय संस्कृति की शिरोमणि.(संकलन) ताशकंद,2018).

[6] Востоковеды Узбекистана. Ташкент, 2005. – С. 268. (उज़्बेकिस्तान के ओरिएंटलिस्ट, ताश्कंद, 2005. -पृ.235.)

लेखकों और कवियों की रचनाओं से संबंधित डिप्लोमा थीसिस लिखते हैं। उन में मुख्य हैं - प्रेमचंद, कृष्ण चंदर, यशपाल, निराला, टैगोर, वी.प्रभाकर जैसे आधुनिक साहित्य के प्रतिनिधि और राहुल सांकृत्यायन, महादेवी वर्मा तथा दलितों, महिलाओं और ग्रामीण जीवन से जुड़े विषयों पर भी डिप्लोमा थीसिस लिखी गई हैं।

उज्बेकिस्तान में उच्च शिक्षा के अलावा आम उज़्बेक लोगों में भारत की कला, संस्कृति, इतिहास, गीत, संगीत और नृत्य में भी काफी रुचि है। 2002 से लाल बहादुर शास्त्री भारतीय सांस्कृतिक केंद्र में सामान्य उज़्बेक लोगों के लिए एक साल का हिंदी भाषा पाठ्यक्रम खोला गया है। वहां भी हमारे विश्वविद्यालय के अध्यापक हिंदी पढ़ाते हैं। अब तक इस एक वर्षीय पाठ्यक्रम के अधिकांश छात्र हिंदी भाषा को गहराई से सीखने के लिए आगरा के केंद्रीय हिंदी संस्थान में भी जा चुके हैं।

उज्बेकिस्तान में भारतीय फिल्मों, गीतों और नृत्यों के माध्यम से भारत और हिंदी भाषा के प्रति रुचि पैदा होती है। मैने हमेशा उज्बेकिस्तान में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय फिल्म समारोहों में दर्शकों के लिए (कुल 10 फिल्में) हिन्दी फिल्मों का मौखिक अनुवाद किया है। उज़्बेक टीवी चैनलों पर उज़्बेकी में डब करके महाभारत और रामायण सिरियलों का प्रासारण हुआ था। प्रसिद्ध अनुवादक अमीर फ़ायज़ुलायेव ने इन अनूठे सिरियलों का अनुवाद किया था।

अनुवाद जनताओं के बीच एक पुल : ज़्बेकिस्तान में अनुवादित रचनाएँ "संसार का साहित्य़" और "पूर्व का सितारा" पत्रिकाओं में लगातार प्रकाशित होती रहती थीं। अनुवादक अमीर फ़ायज़ुलायेव ने "विश्व साहित्य" पत्रिका में एक संपादक के रूप में काम करते थे और कई भारतीय लेखकों की कृतियों का अनुवाद करके उज़्बेक पाठकों तक पहुँचाया। अनूदित रचनाएँ पहले "पूर्व का सितारा" पत्रिका के पन्नों में प्रकाशित होती थीं। 1955-1961 के दौरान इस पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ थीं : प्रेमचंद, कृष्ण चंदर, रवींद्रनाथ टैगोर, सत्यनारायण सिन्हा, महेंद्र भटनागर, अमृता प्रीतम जैसे लेखकों की कई कहानियां। इन सभी रचनाओं का अनुवाद उज़्बेक कवियों, लेखकों और साहित्यिक विद्वानों ने रुसी भाषा से किया था, जिनको हिंदी नहीं आती थी।

इसके अलावा कई भारतविदों ने भी हिंदी और उर्दू से उज़्बेक में अनुवाद किया है – उदाहरण के लिये सन् 1965 को जाने-माने भारतविद् रखमोनबर्दी मुहम्मदजोनोव ने प्रेमचंद के उपन्यास "गोदान", नानक सिंह की कहानी तथा कृष्ण चंदर, ख्वाजा अहमद अब्बास, मिर्ज़ा ग़ालिब के ग़ज़ल और छंदों का उज़्बेक में अनुवाद किया। सन् 1975 को उन्होंने इन सब को एक संग्रह के रुप में प्रकाशित किया।

साथ ही**, नबी मुहामेदोव**, जो हिंदी और उर्दू भाषाओं के बड़े ज्ञानी थे, उन्होंने भी अली सरदार जाफरी, मुहम्मद इकबाल, जोश मलीहाबादी, फैज अहमद फैज की कविताओं का उज़्बेक में अनुवाद किया। कविता के अलावा, एन. मुहामेदोव ने मिर्ज़ा रुसवा के "उमरोज़न अदा" उपन्यास का अनुवाद किया, भबानी भट्टाचार्य, प्रेमचंद, कृष्ण चंद्र, ख्वाजा अहमद अब्बास की कहानियों का उज़्बेक में अनुवाद किया। उन्होंने महान भारतीय महाकाव्य "महाभारत" के 12 भागों का उज़्बेक में अनुवाद किया। आज तक प्रेमचंद जी के 13 उपन्यासों में से 6 का उज़्बेक में अनुवाद किया जा चुका है : "गोदान"

(1962), "निर्मला" (1967), "गबन" (1976), "कर्मभूमि" (1985), "सेवासदन" (2003), साथ ही उपन्यास "वर्धन" (2009) का अनुवाद "विश्व साहित्य" पत्रिका के पन्नों पर प्रकाशित हुआ था।

साथ साथ उज़्बेक लेखकों की रचनाओं का हिंदी और उर्दू में अनुवाद किया गया है, हालाँकि उनमें से कुछ ही बना हुए हैं। उदाहरण के लिए, असकद मुख्तार के उपन्यास "सिस्टर्स" सिंगारी का परोक्ष रूप से 1979 में गणेश चंद्र द्वारा अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद किया गया था। ओडिल याकूबोव द्वारा उलुगबिका का दरिगा उपन्यास "उलुगबेक का खजाना" का 1983 में सुधीर कुमार माथुर द्वारा हिंदी में अनुवाद किया गया था। पिरीमकुल कादिरोव के उपन्यास "स्टाररी नाइट्स" का 1988 में सुधीर कुमार माथुर द्वारा हिंदी में अनुवाद किया गया था। उज़्बेक से हिन्दी में अनुवादित कृतियाँ इस प्रकार हैं : अस्काद मुख़्तार –चिंगारी (1979), ओदिल यकुबोव - उलुगबेक का दरोगा (1983), नबी मुहामेदोव जी पीरिमकुल कादिरोव – बाबर (1988).

हमारे गुरु रहमोनबर्डी मुखमदजोनोव ने अलीशेर नवोई की ग़ज़लों का उर्दू में अनुवाद किया। श्री नबी मुहामेदोव ने जुल्फिया द्वारा लिखित कविता संग्रह "मेमोरी लाइन्स" का उर्दू में अनुवाद किया। 1964 में, शारोफ रशीदोव का महाकाव्य "कश्मीर का गीत" "नागमाये कश्मीर" नाम से प्रकाशित हुआ था। उन्होंने ए. बिल्लायेव की "एडम एम्फ़िबिया" और चिंगिज़ एत्मातोव की "व्हाइट शिप" का उर्दू में अनुवाद किया।

एक हफ्ते पहले विश्वविद्यालय में क्लासिक उज़्बेक कवि ओगाहीय की "उपदेश" नामक पुस्तक का हिंदी, चीनी, तुर्की और उइघुर भाषाओं में अनुवाद किया गया। इस पुस्तक का हिंदी में अनुवाद हमारे विभाग के अध्यपकों द्वारा किया गया है।

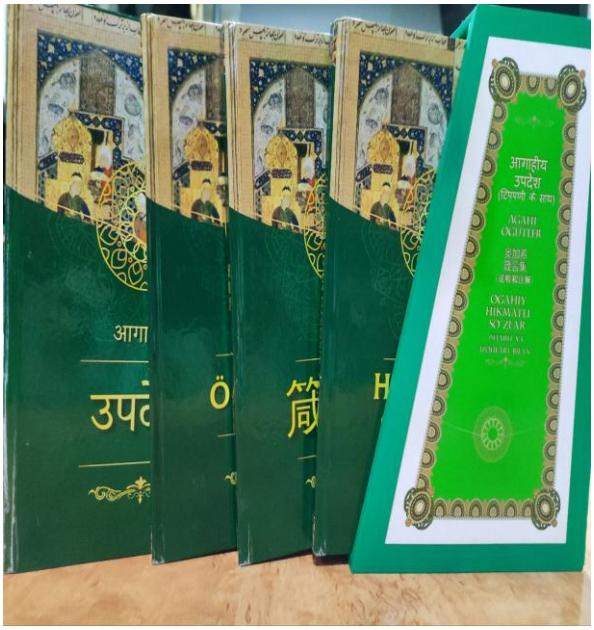

(फोटो - आगहीय के उपदेश नामक किताब)

उज़्बेकिस्तान में भारतीय दूतावास और लाल बहादुर शास्त्री भारतीय सांस्कृतिक केंद्र ने उज़्बेकिस्तान में हिंदी भाषा के विकास में स्कूलों और विश्वविद्यालयों को बहुत समर्थन देते रहते हैं। पिछले 4 सालों में केंद्र के डायरेक्टर, फ़ारसी भाषा और साहित्य के बड़े विद्वान प्रो. श्री चंद्रशेखर ने हमारे विभाग के अध्यापकों के मोनोग्राफ और पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशन में बहुत योगदान दिया है। साथ ही इस वर्ष लाल बहादुर शास्त्री हिंदी की विशेष पीठशाला की 5वीं से लेकर 11वीं कक्षा तक के छात्रों के लिये "हिंदी भाषा" का पाठ्यपुस्तक का प्रकाशन करवाया। इस पाठ्यपुस्तक के विमेचन में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिष्द के डाईरेटर श्री विनय सहस्रबुद्धे जी ने भी भाग लिया।

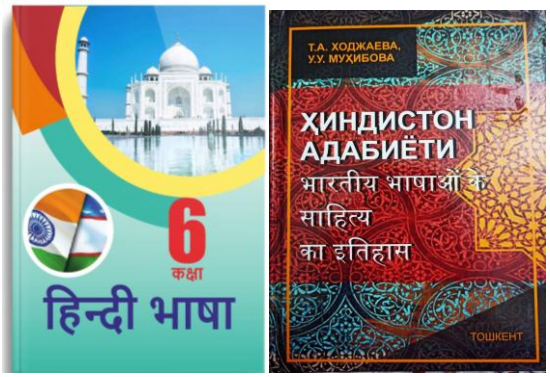

(फोटो - हिन्दी भाषा पाठ्य पुस्तक स्कूलों के लिये)

अंत में, यह कहना आवश्यक है कि लेख का मुख्य उद्देश्य उज्बेकिस्तान में हिंदी और उर्दू भाषा और भारतीय साहित्य की भूमिका, उज़्बेकिस्तान और भारत के बीच दोस्ती और सांस्कृतिक संबंधों में उज़्बेक भारतविदों के योगदान के बारे में संक्षिप्त जानकारी देना था। बेशक, एक छोटे से लेख में इन दोनों देशों की दोस्ती के बारे में पूरी जानकारी देना असंभव है। क्योंकि इसकी जड़ें प्राचीन काल में हैं जब मध्य एशिया में बौद्ध धर्म का आगमन हुआ, विशेष रूप से उजबेकिस्तान के क्षेत्रों में। अबू रेहान बरुनी की भारत यात्रा, बाबरी काल के दौरान विभिन्न क्षेत्रों में संबंध और 20 वीं शताब्दी में उज्बेकिस्तान का भारत के साथ बड़े पैमाने पर संबंध हुए जो ऐतिहासिक स्रोतों में पाये जाते हैं और विभिन्न भारतीय, उज़्बेक और विश्व भर के विद्वानों के शोध कार्यों में परिलक्षित हुए हैं। ऐसा लगता है कि उज्बेकिस्तान और भारत के बीच मित्रता के संबंध हमेशा सकारात्मक रहे हैं और शाश्वत मित्रता द्वारा चिह्नित किए गए हैं।

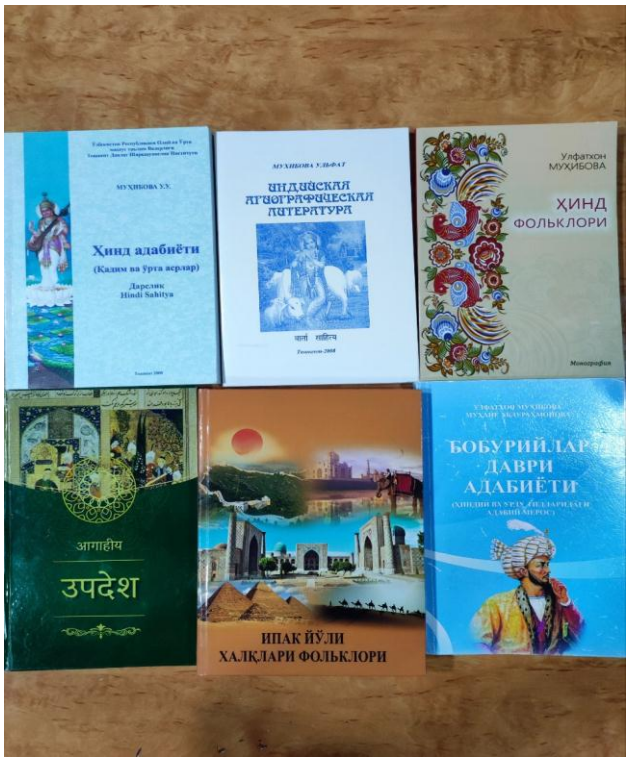

(फोटो – मुहीबोवा की किताबें)

[1]प्रोफेसर,
ताशकन्द राजकीय प्राच्य विद्या संस्था,
ताशकन्द, उज़्बेकिस्तान
[2]सीनियर टीचर,
हिंदी भाषा और साहित्य,
ताशकन्द राजकीय प्राच्य विद्या संस्था,
ताशकन्द, उज़्बेकिस्तान

5 इक्कीसवीं शती के प्रवासी हिन्दी उपन्यासों में नवीन अनछुई समस्याएँ (महिला लेखिकाओं के संदर्भ में)

डॉ. मधु संधु

इक्कीसवीं शती की महिला उपन्यास लेखिकाओं ने अनन्य अछूती समस्याओं को अपने उपन्यासों में समेटा है। भूमंडलीकरण की यह शताब्दी हमारे समक्ष एक नवीन परिदृश्य लेकर आई है। यहाँ सातवाँ आसमान छूने का गौरव है, तो निष्कासन की त्रासदी भी। असुरक्षा पैदा करने वाली बंदूक संस्कृति, उत्तेजित और आतंकित करने वाला न्यूज बिजनेस, मीडिया का श्वेत– श्याम पक्ष, महामारियाँ, भ्रष्ट राजनेता, सेरोगेसी या अड़ोप्शन, मी टू–न जाने कितने अछूते विषयों को इन उपन्यासकारों ने वाणी दी है।

उपन्यास इतिहास नहीं है, कल्पना और अनुभव का कथात्मक मिश्रण है, लेकिन जीवन और जगत की, राजनैतिक और सामाजिक घटनाओं का अनुभूत, सूक्ष्म, प्रामाणिक और जीवंत विवरण हमें उपन्यास ही देता है। आज औपन्यासिक आलोचना के लिए साहित्य शास्त्रीय मानदण्ड फीके पड़ गए हैं। नायक, खलनायक, विदूषक का विलय सामान्य मानव में हो चुका है। परम्परित पारिवारिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि धरातलों पर यह मूल्यांकन असंभव सा हो गया है। अब मूल्यचेतना, मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद, मनोविश्लेषणवाद, नारी विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श बीते वक्त की बात बन गए हैं। प्रवासी लेखिकाओं द्वारा लिखित इक्कीसवीं शती का हिन्दी उपन्यास हमारे समक्ष जीवन के विलक्षण रंग रूप, और अनछुई समस्याएं लेकर उपस्थित हुआ है।

1.बंदूक संस्कृति–संत्रास और दहशत– इक्कीसवीं शती का प्रवासी इस दूसरी दुनिया के देश से पहली दुनिया के उन्नत, सभ्य, सम्पन्न देशों में छलांग लगा अपना कद ऊंचा कर चुका है। लेकिन वहाँ भी आतंक, असुरक्षा और संत्रास है। हथियारों की निर्बाध, निरंकुश बिक्री और निर्दोषों पर जीवनघाती हमले उन उदार देशों की कानून व्यवस्था के ब्लैक होल दिखा रहे हैं। अमेरिका में रहने वाली लेखिका अनिल प्रभा कुमार का उपन्यास **'सितारों में सूराख'**[1] उस देश की बंदूक संस्कृति को लेकर है। यह एक ऐसा देश है, जहां मूँगफली की तरह बन्दूकें बिकती हैं, जहां बंदूक खरीदना आसान है, कुत्ता– बिल्ली खरीदना कठिन। बंदूकें अमेरिकी इतिहास, राजनीति और संस्कृति का अभिन्न अंग हैं। गन कल्चर की जड़ें इतनी गहरी हैं कि इन्हें उखाड़ फेंकना असंभव सा है। अमेरिका के पच्चास राज्यों के प्रतीक पच्चास सितारों वाले ध्वज में बंदूक संस्कृति ने सूराख कर दिये हैं। सभ्य देश का असभ्य जन– जीवन? कभी भी कोई मानसिक रोगी, प्रभुत्व कामना, हीन ग्रंथि या डिप्रेशन का शिकार आदमी शॉपिंग मॉल पर, शैक्षणिक संस्थाओं पर, क्लब या कैसीनो पर, मैक्सिकन या अश्वेतों पर गोलियां चला उनकी बलि लेने का हक लिए है। अमेरिका की आबादी विश्व का चार प्रतिशत है, जबकि यहाँ बंदूकें बयालीस प्रतिशत हैं। बंदूक माइक के लिए मर्दानगी का प्रतीक है। उसका गौरव, उसकी ब्यूटीज हैं। उसके पास अच्छा–खासा गन–कलेक्शन है। जॉन के पास पाँच बन्दूकें हैं। जय भी बंदूक खरीदता है। गन संस्कृति– यानी बंदूक और लाशें। अनिलप्रभा कुमार लिखती हैं–"यह गन कल्चर अमेरिकी कल्चर का पर्याय है। यूँ कहें कि आज का यह

अमेरिका स्थापित ही बंदूक के बल पर हुआ है। सभी जानते हैं कि यहाँ के मूल निवासी रेड इंडियन्स को बंदूक के बल पर ही तो पराजित कर उनकी जमीन हथियाई गई थी। फिर अमेरिकन रेवोल्यूशनरी वार। सब इस बात की गवाही देते हैं कि जिसके पास ताकत है, वही विजेता रहा है।"[2]

चिन्नी के स्कूल पर भी ऐसा ही हमला होता है। सत्रह विदयार्थी अध्यापक मारे जाते हैं। समीर की हत्या इस किशोर बिन ब्याही बच्ची को वैधव्य सा दर्द दे जाती है। साथ की सीट वाला छात्र जब नहीं रहता, तो कैसा लगता है? डैनी की बहन ओब्री मारी जाती है। दहशत का अजगर दिल– दिमाग पर रेंगता है। चर्च के बाहर गोलियों की बौछार, कैसीनो में गोलाबारी, सबवे में लूट–पाट और हत्याएं। कोई भी कहीं भी सुरक्षित नही है–कैलिफोर्निया, टैक्सास, ओहाओ, इलीनायस, फ्लॉरिडा, लासवेगन, ओरलेन्डो।

सबवे से निकलना भी जोखिम से जूझना ही है। अपराधी वृति का कोई भी पुरुष आपको घेर सकता है और बंदूक की नोक पर पर्स और दूसरी कीमती चीजें छीन सकता है। अगर आपके पास यह सब नहीं है तो आपकी हत्या निश्चित है। सुरक्षा तंत्र में घुसा मृत्यु भय का यह सूराख व्यक्ति को पल–पल संत्रस्त करता है।

2. न्यूज बिजनेस/संचार माध्यम–सूचना तकनीक के अविश्वसनीय विकास ने विश्व में एक नई क्रान्ति ला दी है। समाचार पत्र या आकाशवाणी की अपेक्षा लोगों का अब दूरदर्शन और इंटरनेट पर विश्वास बढ़ने लगा है।'सितारों में सूराख' उपन्यास का मुख्य पात्र जय/जे/जायेश/जयसिंह खबरों की दुनिया यानी न्यूज बिजनेस से जुड़ा है। युद्ध संचालन जैसी तीव्र गति और बाज जैसी पैनी आँखों से खबरें पकड़ना–यही दूरदर्शन की दुनिया है । न्यूज एजेंसी से चौनल प्रसारण के लिए खबरें खरीदी जाती हैं। बड़े हादसों का प्रसारण उन्माद के स्तर पर भी पहुँच जाता है। जैसे सीरिया में गोलियों की दनदनाहट, विमान दुर्घटना की फुटेज, नाइट क्लब में गोलियां चलना, सबवे में बंदूक की नोक पर पड़ने वाले डाके वगैरह। आखिरी वक्त में सेटेलाइट से खबरें पहुँचती हैं, रेकॉर्ड होती हैं, संपादित होती हैं। कहानी में प्राण फूंकने के लिए टेलीकास्ट हेतु वीभत्स दृश्य चुने जाते हैं– चीखें, अंधेरा, गिरते पड़ते लोग, खून, सायरन, एम्बुलेन्स। खबरें नकारात्मक ही क्यों ? संचार माध्यम का यह भी एक भयंकर, भयभीत करने वाला सूराख है।

3. सोशल मीडिया और यान्त्रिकी–सामाजिक सम्बन्धों के लिए आज सोश्ल मीडिया एक सशक्त माध्यम बन चुका है। आज के व्यक्ति को सोशल मीडिया ने एक ऐसी आभासी दुनिया में लाकर छोड़ दिया है, जहाँ वह आस–पास के संसार से, उसकी विसंगतियों से, दुख और पीड़ा से कट कर रह गया है। इस आत्मकेंद्रित मनुष्य का चित्रण करती अनिल प्रभा कुमार **'सितारों में सूराख'** में लिखती हैं–"फेसबुक भर गया आत्ममुग्ध तस्वीरों और टिप्पणियों से। मेरे पुरस्कार, मेरी पुस्तकें, मेरी तस्वीरें, मेरे यात्रा विवरण, मेरे बच्चे, मेरी प्रशस्तियॉ। संवेदना शर्मिंदा होती रही और सोश्ल मीडिया पर चुट्कुले घूमते रहे।"[3]

'केसरिया बालम'[4] में स्पष्ट है कि यंत्र युग के फायदे भी हैं और नुकसान भी। इकलौती बेटी को विदेश भेजते वक्त यही सोचा गया था कि टेक्नोलोजी ने हर दूरी पाट दी है। सोश्ल मीडिया की तकनीक द्वारा रोज बेटी के साथ बात भी हो जाती थी। नवासिन को भी देख लिया जाता था, लेकिन त्रासदी यह है कि न माँ बेटी की जचकी पर पहुँच सकी और न बेटी अस्वस्थ, मरणासन्न पिता के लिए कुछ कर सकी। कोरोना और लॉक डाउन के कारण धानी की बेटी आर्या को उसका प्रेमी फोन पर प्रपोज करके मंगनी की अंगूठी कोरियर द्वारा भेजता है।

4. भ्रष्ट राजनीति– हंसा दीप के **'कुबेर'**[5] सुधा ओम ढींगरा के **'नक्काशीदार कैबिनेट'**[6] और **'शेष से अशेष का सफर'**[7] तथा अनिलप्रभा कुमार के **'सितारों में सूराख'** में बेपनाह दौलत से खेलते राजनेताओं की धूर्तताओं का अंकन है। हंसा दीप के 'कुबेर' में अपने वोट बैंक के लिए, मीडिया पर प्रचार के लिए, अखबारों में

वाहवाही के लिए, राजनीति की दुकान चलाने के लिए नेता लोग अकसर चौके–छक्के लगाया करते हैं–जैसे किसी गरीब के घर भोजन करना, किसी गाँव को गोद लेना, किसी बच्चे की पढ़ाई का दायित्व ओढ़ना और जैसे ही वे चुनाव हारते हैं–सब औंधे मुंह गिर जाता है। यही गाज'कुबेर'के नायक धन्नू पर गिरती है। नेताजी उसे दो मील दूर अँग्रेजी स्कूल में दाखिल करवा दो वर्ष तो उसका खर्च उठाते हैं, लेकिन बाद में शिक्षिका और बापू की मार तथा भूख उसे शहर जाने वाली सड़क पर ला खड़ा कर देती है। स्पष्ट है कि कानून अंधा नहीं, कानून गुनाहगार है, जो अपराधियों का साथ देता है।

सुधा ओम ढींगरा के उपन्यास **'नक्काशीदार कैबिनेट'** में भी भ्रष्ट तंत्र प्रतिपाद्य में प्रमुख है। क्या पुलिस कर्मी, क्या अधिकारी सब मंगल चाचा के यहाँ बिके हुये हैं। उनके अड्डे पर आकर शराब पीते हैं, नशा करते है, नाचते गाते हैं। इन्हें तो कोई भी खरीद सकता है। दुष्कर्म और हत्या की शिकार मीनल की लाश की तब तक सुध नहीं ली जाती, जब तक सारा गाँव धरना नहीं देता।

उनके **'शेष से अशेष का सफर'** में भी राजनेता और राजनीति दोनों के कुचित्र बिखरे पड़े हैं। कोरोना से उत्पन्न आपातकाल में न्यूयार्क का मेयर ऑपोजिट दल का होने के कारण रूलिंग दल न्यूयार्क की उपेक्षा कर अपने राज्यों को मदद पहुंचाने में व्यस्त रहता है। डॉली का बलात्कार करने और करवाने वाला उसका गुंडा जेठ एक राजनेता के साथ जुड़ा है। सायरा पर एसिड अटैक करने वाले छात्र यूनियन के नेता का राजनेता पिता उनका घर खरीद उन्हें दस साल का अमेरिका का वीजा दिलवा देश से ही निकाल देते हैं। राजनीति उपन्यास में खलपात्रों का हथियार बनकर आई है। दक्षिण भारतीय युवती का उत्तर भारतीय युवक से प्रेम जान उसका राजनेता पिता पूरे परिवार को ही शहर छोड़ने के लिए विवश कर देता।

अनिलप्रभा कुमार का उपन्यास **'सितारों में सूराख'** बताता है कि अमेरिकी राजनेता श्वेत राष्ट्रवाद के समर्थक हैं। क्योंकि उन्हें गन–लाबी से चुनावों में बहुत सा अनुदान मिलता है, इसीलिए राजनेता बंदूक संशोधन कानून पर कार्यवाही के कभी हक में नहीं रहे।

सुषम बेदी के **'पानी केरा बुदबुदा'**[8] में कश्मीरी पंडितों की त्रासदियाँ हैं।

5. कोरोना–इक्कीसवीं शती के दूसरे दशक के उत्तरार्द्ध और तीसरे दशक की शुरुआत में पूरा विश्व कोरोना महामारी के बायोलोजिकल आक्रमण की चपेट में आ गया। उपन्यासकारों ने महामारी के कारण पूरे विश्व में फैली बेचौनी और परेशानी, संत्रास और आतंक, असुरक्षा और अराजकता के अनेक चित्र दिये हैं। सुधा ओम ढींगरा के **'दृश्य से अदृश्य का सफर'** में कोरोना के कारण पात्रों को गहरी उदासी, वीरानगी, मंदी, भुखमरी, असुरक्षा, अपनों को खोने का दर्द मिलता है। उपन्यास की समय सीमा 8 मार्च 2020 की शाम से कोरोना की वैक्सीन अप्रूव होने से पहले तक की– यानी कोई एक वर्ष की है। हवाओं में समाई एक नेगेटिव अदृश्य शक्ति अजेय बनकर मानव जाति के पूरे अस्तित्व को निगल रही है। अस्पतालों में बिस्तर के लिए प्रतीक्षा कर रहे मरीज और रेफ्रीजरेटिड ट्रकों में अंतिम संस्कार का इंतजार करते शव हैं। मास्क, सेनेटाइजर, डिसपोजेबल दस्ताने, ग्रोसरी स्टोर के बाहर की लंबी– लंबी लाइनें, क्वारिंटीन, दूरियों से उपजा अजनबीपन है। सब कुछ बंद है या ऑन लाइन है। बीमारों और शवों से अपनों की अनिवार्य दूरी बनी हुई है। इसके बावजूद डॉक्टर, नर्सें, सभी स्वास्थ्य कर्मचारीध्अधिकारी, शोधार्थी इस युद्ध को जीतने में जुटे हैं। लता का सेवानिवृत पति भी कोरोना के इस आपातकाल में मरीजों के लिए न्यूयार्क अस्पताल में बुला लिया जाता है। परिवार के बाकी डॉक्टर सदस्य भी अस्पतालों में इस महामारी के लिए वैसे ही तैनात हैं, जैसे युद्ध के समय सैनिक सीमाओं पर तैनात होते हैं। लता बेघर, नौकरी खो चुके लोगों के सूप किचन और फूड बैंक से जुड़ समाज को पूरा योगदान दे रही है। डॉक्टरों को तो इस संक्रमण का शिकार होना ही है। उसका पति और बेटा– बहू भी कोरोना संक्रमित होते हैं।

हंसा दीप के **'केसरिया बालम'** में भी

महामारी कोरोना और लॉक डाउन का जिक्र आता है। उनके 2022 में प्रकाशित **'काँच के घर'**[9] में विश्व एक हद तक कोरोना के कहर से मुक्त हो चुका है। वैक्सीन के दोनों डोज लग चुके हैं और लोग अपने कामों के लिए निकाल चुके हैं।

6.कैंसर–इस मूक हत्यारिन बीमारी पर लेखिकाओं का सूक्ष्म पर्यवेक्षण मिलता है। बारीकियाँ तो ऐसे हैं जैसे किसी कैंसर विशेषज्ञ डॉक्टर की रचना हो या लेखिका के किसी आत्मीय के साथ सब घटित हुआ हो। उषा प्रियम्वदा **'भया कबीर उदास'**[10] में लिखती हैं कि कुछ कोषाणु अपने ही शरीर में आतंकवादियों की तरह आततायी बन जाते हैं और स्वयं उसी को ही नष्ट करने लगते हैं। तभी उन्हें परास्त करने के लिए तरह– तरह के अस्त्र प्रयुक्त किए जाते हैं। रुग्ण अंग, ग्रंथियां, मांसपेशियाँ काट कर निकाल दिये जाते हैं। शरीर जहर से भर दिया जाता है, जिससे कैंसर अणु नष्ट हो जाएं, फिर भयंकर एक्स रे किरणों से उस भाग को दग्ध कर दिया जाता है। रोगी को हर वक्त उबकाइयाँ आती हैं। अपच, दुर्बलता, बाल झड़ना, भौहों की अनुपस्थिति, नाखून गिरना, मुंह में छाले– सब शुरू हो जाता है। अपना शरीर ही अपना वैरी बन जाता है। एक कैंसर कोश को बढ़ते– बढ़ते प्रकट होने तक कई महीने लगते हैं। जब संख्या दस लाख हो जाती है, तब उसका पता चलता है। ब्रेन कैंसर में तो यादाश्त, चलना– फिरना– सब खत्म हो जाता है। पता ही नहीं चलता कि रोग अधिक दारुण है या उसका उपचार। पहले सर्जरी, फिर कीमोथैरेपी, उसके बाद रेडिएशन और फिर पेट के मांस से नई ब्रेस्ट गढ़ कर उसका आरोपण और नींद के लिए मारफीन। शनि, इतवार को छोड़कर पूरे छह सप्ताह की रेडिएशन थेरेपी त्वचा को झुलसा कर काला कर देती है। फिर परतें उतरने लगती हैं। अंदर से लाल– लाल मांस झलकता है और फिर मवाद रिसने लगता है। साइकोलोजिस्ट के यहाँ भी जाना पड़ता है। डोज ड्रेस थेरेपी भी होती है– ड्रग सम्मिश्रण के चार चक्र, चार चक्र टेकसोटेयर के। उपचार के बाद छोटे–छोटे घुँघराले बाल आते हैं। उषा प्रिंयंवदा के 'भया कबीर उदास' की अल्पाकांक्षी 35–36 वर्षीय मेघावी नायिका इतिहास में पीएच. डी. करने के लिए अमेरिका आई थी। वह थीसिस बीच में छोड़कर पढ़ाने लगी और फिर उसके सारे विकल्प कैंसर से महायुद्ध के संकल्प में परिवर्तित हो गए। उसने वक्ष पर सख्त, कड़ी, पीड़ाहीन गाँठे देखी और ऐसे ही एक्स– रे, मैमोग्राफ करवा लिए। बायोप्सी में कैंसर निकाल आया। किसी स्त्री को कैंसर होना सबसे त्रासद है। कितनी पीड़ा है–"मेरे लिए मेरे बाल और मेरी ब्रेस्ट मेरी संपूर्णता के लिए बहुत आवश्यक है। उनके बिना मैं बदसूरत और अधूरी हो जाऊँगी।"[11]

कैंसर द्वारा मिला आधा–अधूरा शरीर और जीवन उसे निराशाओं और उदासियों में धकेलता रहता है। सोचती है–"अगर थोड़ी हिम्मत करके छाती में पुनर्निर्माण करा लेती तो अब अपने को इतने अस्वाभाविक रूप से क्षत–विक्षत महसूस न करती।"[12]

यह कैंसर उसे अपनी नानी से उतराधिकार में मिला है, जिसका चेहरा भी उसे ठीक से याद नहीं। लिली को ध्यान है कि वसुंधरा का वक्ष कैंसर ब्रेन में, अपर्णा का रीढ़ से होकर फेफड़ों में और यूथिका का हड्डियों तक फैल गया था। ज्योति राय को भी कैंसर है और फिलिस टेट की मृत्यु भी कैंसर से ही हुई थी। कैंसर यानी घिसट– घिसट कर मरना। कैंसर उसे नर्सों, डाक्टरों और अस्पताल के अपरिचित माहौल में भेज देता है।

उनके **'नदी'**[13] उपन्यास के अनेक पात्र कैंसर से जूझ रहे हैं। आकाशगंगा के दो भाइयों की कैंसर से मृत्यु हो चुकी है। आकाशगंगा का बेटा भविष्य पाँच साल की उम्र में कैंसर के कारण मृत्यु की गोद में समा जाता है। प्रवीण बहन का कैंसर चौथी स्टेज पर है। आकाशगंगा का बेटा स्तव्य या स्टीवेन कैंसर पर बहुत कुछ विजय पा लेता है। बोस्टन के अस्पताल का कैंसर विशेषज्ञ डॉ. एरिक अमेरिका से स्विट्जरलैंड के अस्पताल जाकर रिसर्च करता है और बेटी तूलिका की बोन मैरो की मदद से अपने बायोलोजिकल बेटे स्टीवेन का जीवन बचा लेता है।

7. ग्लोबल जीवन/भूमण्डलीकरण–आज एक जैनेटिक भूमंडलीकरण, एक अंतर्राष्ट्रीय नसल आकार ले रही है। अर्चना पेन्यूली के **'वेयर डू आई बिलांग'**[14] में अमेरिकन स्टेफनी की जैनेटिक पंक्ति में अनेक राष्ट्रों का सम्मिश्रण है। उसके नाना पार्थ सारथी मुखर्जी कलकता के भारतीय थे। उसकी बेटी अमेरिकन और पति डेनिश है। पुरोहित मिश्रा जी की पोती इजराइल लड़के के साथ भाग जाती है। सुरेश लिंडा से शादी करता है। सबीना की शादी बुल्गेरियन लड़के के साथ होती है। रीना मार्टिन से विवाह करती है। डेनियल की माँ भारतीय और पिता डेनिश हैं। अतुल विपुल भी इसी अन्तर्राष्ट्रीय नसल का हिस्सा हैं। पत्रकार स्टीवन का एक भारतीय लड़की से सात साल प्रेम चला है।

डेनिश इंडियन सोसाइटी भारतीय उत्सव –त्योहारों और खाने का आयोजन करती है। तिरंगे भारतीय और दोरंगे डेनिश झंडे एक साथ लगाए जाते हैं। भारतीय संगीत और नृत्य का आयोजन किया जाता है। है। डेनिश अन्तर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक संगठन एक महीने के कार्यक्रम 'इमेजस ऑफ एशिया' का आयोजन करता है। इसके कवि सम्मेलन में गोविंद प्रसाद भी कविता पाठ करते हैं। दक्षा सेठ की टीम कत्थक करती है। गीत संगीत चलते हैं।

अर्चना पेन्यूली का **'कैराली मसाज पार्लर'**[15] ग्लोबल उपन्यास है। केरल की बाइस– तेईस वर्षीय नैन्सी का पहला पति अब्राहम भारतीय है, उसका दूसरा पति लार्स हैनसन डेनमार्क से है, तीसरा पति मार्को फ्रांसीसी है और चौथा पति पॉल स्काट लैंड से है। कथा चार महाद्वीपों तक फैली है। बेटा जोशुआ पहले पिता के साथ मोम्बासा और नैरोबी में रहता है और फिर कैनेडा में पढ़ाई करने पहुँच जाता है। बहन रेचन एशिया के बहरीन की राजधानी मनापा और भाई जार्ज कतर की राजधानी दोहा में बसे हैं। नैन्सी भी रेचल के बेटे की शादी पर मनापा और भाई के पास कतर आती है। मौरीन केन्या के मोम्बासा यानी अफ्रीका महाद्वीप से है। मौरीन के बेटे अमेरिका में हैं। पुत्रों के कारण अमेरिका आना जाना बना ही रहता है। एशिया के भी कुछ देश घूम चुकी है। पति के साथ भारत यात्रा भी कर चुकी है। मार्को की दादी पोलैंड से है। नैन्सी तीन संस्कृतियों के बीच पली– बढ़ी है, तो स्कॉटलैंड का पॉल डेनमार्क में रहता है। उसकी परदादी भारत के मराठा राजसी परिवार से थी और पत्नी नीना भारतीय थी। दोनों के प्रवासन स्पाउस प्रवासन है।

डॉ. हंसा दीप का उपन्यास **'बंद मुट्ठी'**[16] बदलते समय में रिश्तों के नए समीकरण की बात करता है। भूमंडलीकरण की बात पुरानी है, तब की, जब तान्या के पापा पूरा विश्व घूमें थे और फिर सिंगापुर को स्थायी निवास बना लिया था, जब लुधियाना, पंजाब के खन्ना अंकल कतर में रहते थे। सिंगापुर में पली बढ़ी भारतीय नैन्सी पोलैंड के सैम से शादी कर, चीन से बेटी रिया गोद ले बहुसांस्कृतिक देश कैनेडा में रहती है। रिश्तों का एलजेब्रा, कैमिस्ट्रि, फिजिक्स बदल गये है। यह परिवार और इसका जीवन जातीय, देशीय, भाषीय सीमा रेखाओं से आगे का है।

उनके 'केसरिया बालम' की बेकरी के सभी कर्मचारी भिन्न देशों से हैं। साफ–सफाई करने वाली इजाबेला–इजी ईरान से है। असिस्टेंट ग्रेग फिलीपीन्स से है। (ग्रेग इंजीनियर है)। डिलिवरी ब्वाय रेयाज बांग्ला देश से है। सभी जमकर काम करते हैं और बेकरी में ही गीत–संगीत, झूमर–बेली की मस्ती भी चलती रहती है। घर के बाहर एक और घर बन जाता है।

8. जासूसी–प्रवासी लेखिकाओं का लेखन पटल यहीं तक सीमित नहीं रहा। अपराध की दुनिया में रहस्य खोलते उन्होंने जासूसी तंत्र में भी छलांग लगाई है। कादंबरी मेहरा ने **'निष्प्राण गवाह'**[17] में हत्या की पड़ताल के कई चरणों का उल्लेख किया है–पोस्ट मार्टम, हड्डियों का परीक्षण, दांतों की पहचान, संबन्धित स्थल की फोरेंसिक जांच, पिछले कुछ दशकों से हुई ऐसी दुर्घटनाओं की सूची, विशेषज्ञों द्वारा संभावित चेहरे का अनुमानित निर्माण, अखबारों–टेलिविजन और सिनेमा के रजतपटों पर उस की फोटो प्रेषित करना, लोगों से सहायता की मानवीय अपील, फोन टैप करना, पीछा करना, प्यार से और विश्वास में लेकर

बातें उगलवाना, रहस्य खोलना, सरकारी फाइलें खंगालना, झूठ पकड़ने वाली मशीन से कनेक्ट करना, व्यक्ति की हर हरकत की खबर रखने के लिए उसकी पीठ पर टैग लगा, कलाई पर मीटर बांध देना, हाउस अरेस्ट करना।

9. निष्कासन का हुकमनामा–पराये देश में सबसे बड़ी त्रासदी यह है की आपको खाली हाथ देश छोड़ने का, निष्कासन का फरमान मिल जाय। नीना पॉल के **'कुछ गाँव गाँव कुछ शहर शहर'**[18] में यही स्थिति है। यूगांडा के राष्ट्रपति ईदी अमीन ने खुलेआम ऐलान किया कि सभी भारतवंशी, एशियन युगांडा छोड़ कर एक सप्ताह के अंदर, अपनी सारी जायदाद, धन–दौलत छोड़कर और सिर्फ दो सूटकेस में थोड़ा सा जरूरी सामान तथा 55 डॉलर लेकर देश छोड़ दें। सरला, सरोज और सुरेश पाँच महीने की निशा को लेकर लंदन के हीथ्रो हवाई अड्डे पर खाली हाथ उतरते हैं और लेस्टर के लाफ्बरों में अपना भाग्य आजमाने आ जाते हैं।

10.सेरोगेसी या अडोप्शन–बच्चा गोद लेने के लिए भी ढेरों आर्थिक और कानूनी मुश्किलों से गुजरना पड़ता है। भारत में तो प्रवासी भारतीयों और विदेशियों के लिए सेरोगेसी निषिद्ध है। केनेडा के अपने नियम हैं। चीन से बच्चा गोद लिया जा सकता है, लेकिन कागजी कार्यवाही में ही तीन–चार वर्ष का समय लग जाता है। आवेदन पत्र, संदर्भ पत्र, रिफ्रेन्स पत्र, साक्षात्कार, निरीक्षण– परीक्षण, आय, रख–रखाव, पासपोर्ट वीजा, कस्टम, भाषा, सैंकड़ों जानकारियाँ चाहिए। जबकि यह देश आतंकवाद के शिकार लोगों को झट से पनाह दे देता है। हंसा दीप के **'बंद मुट्ठी'** में एडाप्शन और उससे पहले टेस्ट ट्यूब बेबी के लिए तान्या– सैम के हजारों डॉलर लग जाते हैं। बैंक से, क्रेडिट कार्ड से लिए लोन की रकम भी काफी हो जाती है। यह भारत्पोलैंड का युगल अंततरू चीन से बच्चा गोद लेता है।

मी टू, टीम संस्कृति, आपदा और आपदा प्रबंधन जैसे अनेकानेक समय सत्यों की चर्चा भी मिलती है। सत्य जिनसे रोज दो चार होने के लिए व्यक्ति विवश है। बंदूक संस्कृति में सांस लेने के लिए वह अभिशप्त है। देश–निकाला की स्थिति से जूझना तो सबसे विकट है। विज्ञान और यान्त्रिकी ने उसे बहुत कुछ दिया है, तो बहुत कुछ छीन भी लिया है। स्त्री उपन्यासकार ने जासूसी के रहस्य–रोमांच भरे अछूते क्षेत्र में भी प्रवेश किया है।

संदर्भः

1. अनिलप्रभा कुमार, सितारों में सूराख, भावना प्रकाशन, दिल्ली 2021
2. वही, पृष्ठ 129
3. वही, पृष्ठ 73
4. हंसा दीप, केसरिया बालम, मातृभारती ऐप, जुलाई 2020
5. हंसा दीप, कुबेर, शिवना प्रकाशन, सीहोर, एम. पी. 2019
6. सुधा ओम ढींगरा, नक्काशीदार कैबिनेट, शिवना, सीहोर, एम. पी., 2016
7. सुधा ओम ढींगरा, दृश्य से अदृश्य का सफर, शिवना, सीहोर, एम. पी., 2021
8. सुषम बेदी, पानी केरा बुदबुदा, किताबघर, दिल्ली, 2017
9. हंसा दीप, काँच के घर, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2022
10. उषा प्रियम्वदा, भया कबीर उदास, राजकमल, दिल्ली, 2007
11. वही, पृष्ठ 40
12. वही, पृष्ठ 144
13. उषा प्रियम्वदा, नदी, राजकमल, दिल्ली, 2014
14. अर्चना पेन्यूली, वेयर डू आई बिलांग, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2010
15. अर्चना पेन्यूली, कैराली मसाज पार्लर, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2020
16. हंसा दीप, बंद मुट्ठी, शिवना, सीहोर, एम. पी., 2017
17. कादंबरी मेहरा, निष्प्राण गवाह, शिवना, सीहोर, एम. पी., 2020
18. नीना पॉल, कुछ गाँव गाँव कुछ शहर शहर, हिन्दी समय, hindisamay.com

पूर्व प्रो. एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर,
पंजाब

6 आदिवासी साहित्य विमर्श : अवधारणा और स्वरूप

डॉ. जयंतिलाल.बी. बारीस

आदिवासी साहित्य से अभिप्राय उस से साहित्य है जिसमें आदिवासी जीवन और समाज उनके दर्शन के अनुरूप अभिव्यक्त होता है। आदिवासी साहित्य के लिए विश्व में अलग-अलग नामों का प्रयोग हुआ है। यूरोप और अमेरिका में इसे 'नेटिव अमेरिकन लिटरेचर', 'कलर्ड लिटरेचर', 'स्लेव लिटरेचर' तथा 'अफ्रीकन-अमेरिकन लिटरेचर', अफ्रीकन देशों में 'ब्लैक लिटरेचर' और ऑस्ट्रेलिया में 'एबोरिजिनल लिटरेचर' तो अंग्रेजी में 'इंडीजिनस लिटरेचर', 'फर्स्ट पीपुल लिटरेचर' एवं 'ट्राइबल लिटरेचर' कहा जाता है। भारतीय भाषाओं में इसके लिए सामान्यया: 'आदिवासी साहित्य' का प्रयोग किया जाता है। आदिवासी साहित्य की अवधारणा के संदर्भ में तीन प्रकार के मत दिखाई पड़ते हैं, जो इस प्रकार हैं -

1. आदिवासी विषय पर गैर आदिवासी लेखकों द्वारा लिखा गया साहित्य
2. आदिवासी रचनाकारों द्वारा लिखा गया साहित्य
3. 'आदिवासियत' (आदिवासी दर्शन) के तत्वों को समाहित किये हुए लिखा गया साहित्य

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में हमारे देश में नए सामाजिक आंदोलनों का उदय हुआ। स्त्रियों, दलितों एवं आदिवासियों की नवीन एकजुटता ने ऐसी माँगें और मुद्दे उठाए जो स्थापित सैद्धांतिकी तथा राजनैतिक दृष्टिकोण के माध्यम से समझे और सुलझाए नहीं जा सकते थे। इन अस्मिताओं ने अपने साथ होने वाले शोषण के लिए अपनी विशेष पहचान को आधार बताते हुए शोषण एवं भेदभाव से संघर्ष के लिए संबंधित अस्मिता को धारण करने वाले समुदायों को अपने साथ लेकर अपनी मुक्ति या अधिकारों की रक्षा के लिए सामूहिक अभियान चलाया। वंचितों के शोषण के खिलाफ उठ खड़ी हुई मुहिम में सामाजिक-राजनीतिक आंदोलनों के अतिरिक्त साहित्यिक आंदोलनों ने भी अपनी उपस्थिति दर्ज करवायी है। स्त्रीवादी साहित्य और दलित साहित्य उसी चेतना के प्रतिफल हैं। आदिवासी साहित्य जीवनवादी साहित्य है जो आदिवासियों के मूलभूत अधिकारों से बेदखल करने वाली सभ्यता के प्रति विद्रोह और अस्तिव एवं अस्मिता को बचाने के उपक्रम के रूप में सामने आया है।

आदिवासी लोक में साहित्य सहित विविध कला-माध्यमों का विकास तथाकथित मुख्यधारा से पहले हो चुका था, लेकिन वहाँ साहित्य सृजन की परंपरा लिखित रूप में न होकर मौखिक रूप में रही। ठेठ जनभाषा में होने और सत्ता प्रतिष्ठानों से दूरी की वजह से भी यह साहित्य आदिवासी समाज की तरह उपेक्षा का शिकार हुआ। आदिवासी जीवन परंपरा और समाज में 'साहित्य' जैसी कोई रूढ़ श्रेणीगत परंपरा नहीं है। नैसर्गिक रूप से वाचिक रहा आदिवासी समाज एक ऐसी सत्ता रहित सभ्यता और संस्कृति का वाहक है जिसमें 'वायदे', 'करार', 'दस्तावेज़' आदि के लिए लिखित साहित्य की आवश्यकता नहीं थी। इस संदर्भ में वाहरू सोनवणे कहते हैं कि - "लिखित ही केवल साहित्य होता है यह कहना ही आदिवासियों की दृष्टि से असंगत है। साहित्य और कला, साहित्य और जीवन के बीच जो दीवारें खड़ी हैं, उन दीवारों का आदिवासी समाज में कुछ

भी स्थान नहीं है। इन व्याख्याओं को बदलना जरूरी है क्योंकि आज आदिवासी समाज में कई प्रथाएँ, लोकगीत और नाटक तथा अनेक अन्य कलाएँ विद्यमान हैं जिसे शब्दबद्ध नहीं किया गया है। हजारों वर्षों से चली आ रही परंपराएँ कभी थमी नहीं। वे परंपराएँ आज भी मौलिक रूप में आदिवासी जीवन का अभिन्न अंग रही हैं।"[1] आदिवासी साहित्य का भूगोल, समाज, भाषा, संदर्भ शेष साहित्य से उसी तरह भिन्न है, जिस प्रकार स्वयं आदिवासी समुदाय। यही अलगाव या भिन्नता इनकी प्रमुख विशेषता है। दो दशक पूर्व हमारी केन्द्रीय सरकार द्वारा आरंभ की गई आर्थिक उदारीकरण की नीतियों ने बाजारवाद का रास्ता खोला। तभी से मुक्त व्यापार एवं बाजार के नाम पर मुनाफे और लूट का षड्यंत्र आदिवासियों के जल, जंगल, जमीन से भी आगे जाकर उनके जीवन को दांव पर लगा रहा है। बाजार और सत्ता के गठजोड़ ने आदिवासियों के समक्ष अस्तित्व एवं अस्मिता का संकट खड़ा कर दिया। जब सवाल अस्तित्व और अस्मिता का हो तो उसका प्रतिरोध होना भी स्वाभाविक है। सामाजिक एवं राजनीतिक प्रतिरोध के अलावा कला एवं साहित्य के माध्यम से भी प्रतिरोध किया गया। उसी के परिणामस्वरूप आदिवासी साहित्य विमर्श केंद्र में आया। रमणिका गुप्ता कहती हैं कि- "आदिवासियों को गैर आदिवासियों ने जंगली, काहिल, जाहिल, मूरख, सीधा-साधा, भोला (अपमानजनक अर्थों में) या बुद्धू कह कर, एक हीन भावना भर दी कि वे पिछड़े हैं और किसी काबिल भी नहीं हैं। धीरे-धीरे उनमें यह हीन ग्रन्थि विकसित होती गई। आदिवासी साहित्य उन्हें इस ग्रन्थि से मुक्त कराने का हथियार है।"[2]

देश की आजादी के बाद आदिवासी स्वायत्तता के लिए जयपाल सिंह मुंडा के नेतृत्व में भारतीय राजनीति से लेकर साहित्य तक में आदिवासी चेतना के स्वर सुनाई देते हैं। उसके बाद के आदिवासी लेखन को साहित्य के विकास क्रम के रूप में देखा जा सकता है, जिसमें समय-समय पर गैर-आदिवासी साहित्यकारों ने आदिवासी जीवन और समाज को अभिव्यक्त किया है। आदिवासियों पर जो साहित्य लिखा गया है उसमें या तो आदिवासियों के प्रति सहानुभूति का भाव है या उनके बाह्य क्रियाकलापों को दर्शाया गया है। इस संदर्भ में रमेशचंद मीणा कहते हैं कि - "आदिवासी समाज को बहुत कम लोग जानते हैं क्योंकि लोग उतना ही जानेंगे जितना उन पर लिखा गया है। हिन्दी साहित्य में बहुत से विमर्शों की तुलना में आदिवासी-विमर्श की गूँज कम दिखलाई पड़ती है।"[3] हिन्दी भाषा में अधिकांश साहित्य गैर-आदिवासी रचनाकारों के द्वारा लिखा जा रहा है। वैसे आदिवासी रचनाओं एवं लेखकों की उपस्थिति बीसवीं शताब्दी के दूसरे या तीसरे दशक से मिलने लगती है, किन्तु वे रचनाएँ एवं लेखक मुख्यधारा के साहित्य में समाहित नहीं किए गये हैं | अब आदिवासियों ने स्वयं अपनी पीड़ा को अभिव्यक्त करने का लेखन कार्य किया है। आज उनमें अपनी अस्मिता की छटपटाहट और बैचेनी साफ देखी जा सकती है। जिसका परिणाम यह हुआ कि आदिवासी रचनाकार अपनी मूल भाषा में साहित्य सृजन कर रहे हैं।

कोई भी साहित्यिक आंदोलन किसी तिथि विशेष से एकाएक आरंभ नहीं हो जाता। उसके उद्भव और विकास में तमाम तरह की परिस्थितियाँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। भारत सरकार की नई आर्थिक नीतियों ने आदिवासी शोषण-उत्पीड़न की प्रक्रिया तेज कर दी, जिसके फलस्वरूप उनके प्रतिरोध का स्वर मुखरित हुआ। समकालीन आदिवासी लेखन और विमर्श का प्रारंभ नब्बे के दशक के बाद से मानते हुए गंगा सहाय मीणा लिखते हैं कि - "1991 के बाद आर्थिक उदारीकरण की नीतियों से तेज हुई

आदिवासी शोषण की प्रक्रिया के प्रतिरोधस्वरूप आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के लिए राष्ट्रीय स्तर पर पैदा हुई रचनात्मक उर्जा आदिवासी साहित्य है।"[4] इस संदर्भ में सरिता देवी का मानना है कि "हिन्दी में आदिवासी साहित्य का व्यवस्थित रूप विकास सन 1990 के पश्चात् हुआ इससे पूर्व तक साहित्य के क्षेत्र में भी आदिवासी समाज पर बहुत ही कम लिखा गया था। स्वतंत्रता से पहले जो आदिवासी साहित्य लिखा गया है उसमें आदिवासी जीवन की जाँच-पड़ताल बहुत सतही एवं रोमानी दृष्टि से की गई। इस कारण आदिवासी समाज का प्रत्येक संदर्भ रेखांकित नहीं हो पाया। लेकिन बीसवीं सदी के सातवें-आठवें दशक तक आदिवासी साहित्य में जो बदलाव आया तथा उस बदलावों को चित्रित करने वाले साहित्यकारों में कुछ साहित्यकारों ने अथक प्रयास किया है एवं आदिवासी साहित्य को समाज में एक नया मोड़ दिया है।"[5] आदिवासी साहित्य अस्मिता की खोज, दिकुओं के शोषण के विभिन्न रूपों के उद्घाटन तथा आदिवासी अस्तित्व एवं अस्मिता के संकट और उसके विरुद्ध हो रहे प्रतिरोध का साहित्य है। आज आदिवासियों में जो चेतना जाग्रत हुई है उसके परिणामस्वरूप नई-नई विचारधाराओं एवं क्रांतियों से उसका परिचय हुआ है। जिनके परिप्रेक्ष्य में वह अपनी नई-पुरानी स्थितियों का आंकलन करने लगा है। उसमें अपने होने या न होने, अपने अधिकारों की वर्तमान स्थिति, अपने साथ हुए भेदभाव एवं अन्याय के प्रति बोध जागा है। यही बोध उसके साहित्य में अभिव्यक्त हो रहा है।

आदिवासी साहित्य में सहानुभूति और स्वानुभूति के सवाल को लेकर निरंतर बहस जारी है। सहानुभूति के तौर पर लिखने वाले रचनाकार भी स्वानुभूति को अधिक महत्व देते हैं, इसलिए वे भोगे हुए यथार्थ पर लिखने वाले लेखकों को अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। सहानुभूति और स्वानुभूति विवाद को लेकर दो धारणाएँ विकसित होती हैं - पहली है, भोक्ता की पीड़ा और अनुभूति की प्रमाणिकता तथा दूसरी है, स्थिति के प्रति करुणा और सहानुभूतिपरक दृष्टि। अनुभूति की प्रमाणिकता को स्पष्ट करते हुए भीष्म साहनी लिखते हैं कि - "मेरी नजर में उसी रचना में खरापन होगा, जिसके सृजन में लेखक का समूचा सर्जनात्मक व्यक्तित्व यानी उसका संवेदन, उसकी कल्पना, उसका चिंतन और उसकी दृष्टि सक्रिय होते हैं। पर जहाँ तक लेखक के सृजन का सवाल है, किसी सीमा तक ही इन अपेक्षाओं की उपयोगिता रहती है। क्योंकि मूलतः लेखक का संवेदन ही उसे रास्ता सुझाता है। लेखक का सर्जनात्मक व्यक्तित्व इन अपेक्षाओं से नहीं बनता, वह उसके अपने संस्कारों, अनुभवों, चिंतन, पठन-पाठन और उसकी सूझ से बनता है। हाँ, जिस माहौल में वह जीता और साँस लेता है, उस माहौल के प्रति वह निश्चय ही उत्तरोत्तर सचेत होता जाता है।"[6]

आदिवासियों के हितों के लिए लिखा गया साहित्य ही सही अर्थों में आदिवासी साहित्य होता है, चाहे वह स्वानुभूति का हो या सहानुभूति का। लेकिन आदिवासी लेखक और चिंतक इस बात से पूर्णतः सहमत नहीं होते हैं। वे गैर-आदिवासी लेखकों द्वारा रचे गए साहित्य को 'आदिवासी चेतना' या आदिवासी सहानुभूति का साहित्य कहकर नकार देते हैं। इसके पीछे उनका तर्क है कि आदिवासी की पीड़ा, दुःख-दर्द को वह स्वयं ही जान सकता है और वही पूरी ईमानदारी से इसको अभिव्यक्त कर सकता है। गैर-आदिवासियों के रचना-संसार में द्रष्टा की सहानुभूति और करुणा हो सकती है, भोक्ता की पीड़ा और अनुभूति की सच्चाई नहीं हो सकती है। इसके लिए आदिवासी जीवन की समझ और दृष्टि का विकसित होना अत्यंत आवश्यक है। इस संदर्भ में रमणिका गुप्ता कहती हैं कि - "गैर-आदिवासी

भी संवेदना और सहानुभूति से उनके लिए साहित्य लिखे, तो कौन मना करता है उन्हें ? पर यह उनका अनुभवजन्य साहित्य प्रामाणिक आदिवासी साहित्य नहीं माना जा सकता है। इसे उनके महसूस करने की, उनके अहसासों की अभिव्यक्ति माना जा सकता है, सहानुभूति का साहित्य कहा जा सकता है।"[7] दरअसल साहित्य रचनात्मक विधा है, जिसके सृजन का सभी को समानाधिकार है। लेकिन बाहरी सहानुभूति की चेतना मात्र से उसमें सम्मिलित नहीं हुआ जा सकता है। गैर-आदिवासी रचनाकारों के लेखन में आदिवासियों के प्रति सच्ची सहानुभूति, संवेदना और उनकी मुक्ति की चिंता एवं चेतना है तो उसे 'आदिवासी साहित्य' मानने में किसी भी प्रकार की कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

आदिवासी साहित्य विमर्श के ऐतिहासिक एवं भौतिक कारण हैं। देश की स्वतंत्रता से पहले आदिवासियों की मूल समस्याएँ वनोपज पर प्रतिबंध, तरह-तरह के लगान, महाजनी शोषण, पुलिस-प्रशासन की ज्यादतियाँ आदि हैं, जबकि आजादी के बाद सरकार द्वारा अपनाए गए विकास मॉडल ने आदिवासियों से उनके जीविकोपार्जन के साधन छीनकर बेदखल कर दिया। विस्थापन उनके जीवन की मुख्य समस्या बन गई। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप जहाँ एक ओर आदिवासियों की सांस्कृतिक पहचान नष्ट हो रही है, वहीं दूसरी तरफ उनके अस्तित्व की रक्षा का सवाल खड़ा हो गया है। यदि वे अपना अस्तित्व बचाते हैं तो उनकी सांस्कृतिक पहचान खत्म हो रही है और यदि वे सांस्कृतिक पहचान बचाते हैं तो उनके अस्तित्व पर संकट खड़ा हो जाता है। सामाजिक व्यवस्था की संरचना के अंतर्गत व्यक्तित्व, संस्कृति तथा समाज का संयुक्त स्वरूप दिखाई देता है। आदिवासी समाज अपनी पृथक पहचान की सीमाओं को तोड़कर भौतिक विकास को अपनाते हुए शेष समाज के साथ अंतर्क्रिया करते हुए राष्ट्रीय समाज का अंग बनता है। कार्ल मार्क्स कहते हैं कि - "किसी भी समाज में परिवर्तन के लक्षण भीतर से हो, उसके पहले ही उस पर बाहर से परिवर्तन लाद दिया जाये तो वह समाज एक किस्म के सांस्कृतिक अवसाद में (Cultural Melancholy) जीने को बाध्य हो जाता है।"[8] आदिवासी साहित्य विमर्श मुख्यतः अस्तित्व और अस्मिता का विमर्श है। जिसके माध्यम से आदिवासी समाज की सभ्यता, संस्कृति के साथ-साथ उन पर हो रहे अन्याय, अत्याचार, अपमान, शोषण आदि विभिन्न पहलुओं को अभिव्यक्त किया जा रहा है। विभिन्न रास्तों से गुजरते हुए आदिवासी लेखन एक विस्तृत सांस्कृतिक विमर्श का अंग बन रहा है।

आदिवासी लेखन विविधताओं से भरा हुआ है। मौखिक साहित्य की समृद्ध परंपरा का लाभ आदिवासी रचनाकारों को मिला है। आदिवासी साहित्य की उस तरह कोई केंद्रीय विधा नहीं है, जिस तरह स्त्री साहित्य और दलित साहित्य की आत्मकथात्मक लेखन है। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक-सभी प्रमुख विधाओं में आदिवासी और गैर-आदिवासी रचनाकारों ने आदिवासी जीवन समाज की प्रस्तुति की है। आदिवासी रचनाकारों ने आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व के संघर्ष में कविता को अपना मुख्य हथियार बनाया है। आदिवासी लेखन में आत्मकथात्मक लेखन केन्द्रीय स्थान नहीं बना सका, क्योंकि स्वयं आदिवासी समाज 'आत्म'से अधिक समूह में विश्वास करता है। अधिकांश आदिवासी समुदायों में काफी बाद तक भी निजी और निजता की धारणाएं घर नहीं कर पाईं। परंपरा, संस्कृति, इतिहास से लेकर शोषण और उसका प्रतिरोध-सब कुछ सामूहिक है। समूह की बात आत्मकथा में नहीं, जनकविता में ज्यादा अच्छे से व्यक्त हो सकती है। आदिवासी कलम की धार तेजी से अपने प्रभाव क्षेत्र का विस्तार कर रही है। आजादी से

पहले आदिवासियों की मूल समस्याएं वनोपज पर प्रतिबंध, तरह-तरह के लगान, महाजनी शोषण, पुलिस-प्रशासन की ज्यादतियां आदि हैं जबकि आजादी के बाद भारतीय सरकार द्वारा अपनाए गए विकास के गलत मॉडल ने आदिवासियों से उनके जल, जंगल और जमीन छीनकर उन्हें बेदखल कर दिया। विस्थापन उनके जीवन की मुख्य समस्या बन गई। इस प्रक्रिया में एक ओर उनकी सांस्कृतिक पहचान उनसे छूट रही है, दूसरी ओर उनके अस्तित्व की रक्षा का प्रश्न खड़ा हो गया है। अगर वे पहचान बचाते हैं तो अस्तित्व पर संकट खड़ा होता है और अगर अस्तित्व बचाते हैं तो सांस्कृतिक पहचान नष्ट होती है, इसलिए आज का आदिवासी विमर्श अस्तित्व और अस्मिता का विमर्श है। चूंकि आदिवासी साहित्य अपनी रचनात्मक ऊर्जा आदिवासी विद्रोहों की परंपरा से लेता है, इसलिए उन आंदोलनों की भाषा और भूगोल भी महत्वपूर्ण रहा है। आदिवासी रचनाकारों का मूल साहित्य उनकी इन्हीं भाषाओं में है। हिंदी में मौजूद साहित्य देशज भाषाओं में उपस्थित साहित्य की इसी समृद्ध परंपरा से प्रभावित है। कुछ साहित्य का अनुवाद और रूपांतरण भी हुआ है। भारत की तमाम आदिवासी भाषाओं में लिखा जा रहा साहित्य हिंदी, बांग्ला, तमिल जैसी बड़ी भाषाओं में अनुदित और रूपांतरित होकर एक राष्ट्रीय स्वरूप ग्रहण कर रहा है। प्रकारांतर से पूरा आदिवासी साहित्य बिरसा, सीदो-कानू और तमाम क्रांतिकारी आदिवासियों और उनके आंदोंलनों से विद्रोही चेतना का तेवर लेकर आगे बढ़ रहा है।

आदिवासी साहित्य की पृष्ठभूमि के रूप में आदिवासी समाज की हजारों साल पुरानी साहित्य की मौखिक या वाचिक परंपरा को रखा जा सकता है, जिसे पुरखा साहित्य कहा जाता है। वाचिक परंपरा में उपलब्ध आदिवासी साहित्य जहाँ प्रकृति और प्रेम के विविध रूपों के साथ रचाव और बचाव का साहित्य है, वहीं समकालीन आदिवासी लेखन शोषण के विविध रूपों के उद्घाटन तथा आदिवासी अस्तित्व और अस्मिता के संकटों एवं उनके खिलाफ हो रहे संघर्ष का साहित्य है। डॉ. गोपीराम शर्मा लिखते हैं कि - "आदिवासी साहित्य जीवनवादी साहित्य है। इसमें आदिवासियों के मूलभूत हकों से बेदखल करने वाली सभ्यता के प्रति विरोध की आवाज है। यह साहित्य आदिवासियों के अस्तित्व को बचाने के उपक्रम के रूप में सामने आया है।"[9] हिन्दी कथा साहित्य में आदिवासी समाज के शोषण, उत्पीड़न, तनाव एवं बेचैनियों को स्थान मिला है। आदिवासी साहित्य में विकास की प्रक्रिया से टकराते आदिवासी समुदाय के जीवन संघर्ष का सजीव चित्रण मिलता है। आदिवासी साहित्य की विषय-वस्तु क्रांतिकारी भावना का स्रोत बनकर परिवर्तनकामी सोच को साकार रूप देने में प्रयोग की जा रही है। इस संदर्भ में गंगा सहाय मीणा लिखते हैं कि - "यह उस परिवर्तनकामी चेतना का रचनात्मक हस्तक्षेप है जो देश के मूल निवासियों के वंशजों के प्रति किसी भी प्रकार के भेदभाव का पुरजोर विरोध करती है तथा उनके जल, जंगल, जमीन और जीवन को बचाने के हक में उनके 'आत्म निर्णय' के अधिकार के साथ खड़ी होती है।"[10] आदिवासी साहित्य रचाव-बचाव का साहित्य होने के साथ-साथ आदिवासी जीवन-दर्शन और कई मायनों में शेष साहित्य से अलगाव रखने वाला साहित्य है। आदिवासी साहित्य विविध परंपरा एवं कला रूपों का एक समुच्चय है, जिसमें सभी कला विधाओं के साथ-साथ प्रकृति की भी एक प्रमुख और सुनिश्चित भूमिका होती है अर्थात् वहाँ कलाओं का आपस में अन्योन्याश्रित संबंध होता है। इस संदर्भ में वंदना टेटे का कहना है कि - "आदिवासी साहित्य मूलतः सृजनात्मकता का साहित्य है। यह इंसान के उस दर्शन को अभिव्यक्त करने वाला साहित्य है जो मानता है

कि प्रकृति सृष्टि में जो कुछ भी है, जड़-चेतन, सभी कुछ सुंदर है। ...वह दुनिया को बचाने के लिए सृजन कर रहा है। उसकी चिंताओं में पूरी सृष्टि, समष्टि और प्रकृति है। जिसका एक प्रमुख अंग इन्सान भी है।"[11] आदिवासी साहित्य एक आयामी नहीं है, वह बहुआयामी है। जिसमें हमें विविध कलात्मक अभिरूचियों एवं प्रदर्शनों का सामूहिक सहजीवन का प्रस्तुतीकरण दिखाई देता है। आदिवासी साहित्य एक जीवंत परंपरा है, क्योंकि इसका आधार वाचिकता है जो शब्दों के नये प्रयोग और अनुभव से सदैव नवीनतम बना रहता है।

आदिवासी लेखन विविधताओं को अपने अंदर समेटे हुए है। समृद्ध मौखिक साहित्य परंपरा का लाभ भी आदिवासी साहित्यकारों को मिला है। उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक, यात्रा वृत्तांत आदि प्रमुख विधाओं में आदिवासी एवं गैर-आदिवासी रचनाकारों ने आदिवासी जीवन और समाज का चित्रण प्रस्तुत किया है। आदिवासी समाज 'आत्म' से अधिक सामूहिकता में विश्वास करता है, अतः उसकी परंपरा, संस्कृति, इतिहास से लेकर शोषण और प्रतिरोध आदि में सामूहिक जीवन की अभिव्यक्ति होती है। स्त्री-विमर्श एवं दलित-विमर्श की भाँति आदिवासी साहित्य में आत्मकथात्मक लेखन की कोई केन्द्रीय विधा नहीं है। इस संदर्भ में गंगा सहाय मीणा का मानना है कि - "आदिवासी लेखन में आत्मकथात्मक लेखन केन्द्रीय स्थान नहीं बना सका क्योंकि स्वयं आदिवासी समाज 'आत्म' से अधिक समूह में विश्वास करता है।"[12]

हिन्दी में आदिवासी साहित्य की अवधारणा का विकास हो रहा है जिसके अंतर्गत परंपरा और आधुनिकता का, विकास और विनाश का, मुख्यधारा की संस्कृति और आदिवासी मूल्यबोध, अस्तित्व, अस्मिता का जो द्वंद्व है, उन सबके बीच 'आदिवासी संस्कृति, राजनीति, साहित्य' की एक नई अवधारणा का निर्माण हो रहा है। जीवन की जटिलता और प्रकृति से लगाव ही उसके साहित्य का मूलाधार है। क्योंकि कोई भी अभिव्यक्ति 'स्व' के बिना निर्मित नहीं हो सकती है। आदिवासी साहित्य जीवन का साहित्य है। वह प्रकृति का सहयोगी, सह अस्तित्व का समर्थक, ऊँच-नीच, भेदभाव एवं छल-कपट से दूर है। वह संपत्ति संकलन या जमाखोरी की भावना से मुक्त है। आदिवासी सामाजिक न्याय का पक्षधर होने के साथ-साथ अन्याय का विरोधी है। उसके साहित्य में इन्हीं सब बातों का समावेश होता है। आदिवासी आदिवासी समाज और जीवन-दर्शन को समझने की दिशा में सबसे महत्वपूर्ण दस्तावेज़ 'राँची घोषणा-पत्र'[13] है जिसके अनुसार आदिवासी साहित्य का स्वरूप आदिवासी दर्शन के अनुरूप होना चाहिए। इसके मूल तत्व हैं -

"1. प्रकृति की लय-ताल और संगीत का जो अनुसरण करता हो।
2. जो प्रकृति और प्रेम के आत्मीय संबंध और गरिमा का सम्मान करता हो।
3. जिसमें पुरखा-पूर्वजों के ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल और इंसानी बेहतरी के अनुभवों के प्रति आभार हो।
4. जो समूचे जीव जगत की अवहेलना नहीं करें।
5. जो धनलोलुप और बाजारवादी हिंसा और लालसा का नकार करता हो।
6. जिसमें जीवन के प्रति आनंदमयी अदम्य जिजीविषा हो।
7. जिसमें सृष्टि और समष्टि के प्रति कृतज्ञता का भाव हो।
8. जो धरती को संसाधन की बजाय माँ मानकर उसके बचाव और रचाव के लिए खुद को उसका संरक्षक मानता हो।
9. जिसमें रंग, नस्ल, लिंग, धर्म आदि का विशेष आग्रह न हो।
10. जो हर तरह की गैर-बराबरी के खिलाफ हो।

11. जो भाषाई और सांस्कृतिक विविधता और आत्मनिर्णय के अधिकार के पक्ष में हो।
12. जो सामंती, ब्राह्मणवादी, धनलोलुप और बाजारवादी शब्दावलियों, प्रतीकों, मिथकों और व्यक्तिगत महिमामंडन से असहमत हो।
13. जो सहअस्तित्व, समता, सामूहिकता, सहजीविता, सहभागिता और सामंजस्य को अपना दार्शनिक आधार मानते हुए रचाव बचाव में यकीन करता हो।
14. सहानुभूति, स्वानुभूति की बजाय सामूहिक अनुभूति जिसका प्रबल स्वर-संगीत हो।
15. मूल आदिवासी भाषाओं में अपने विश्व दृष्टि-कोण के साथ जो प्रमुखतः अभिव्यक्त हुआ हो।"[14]

आदिवासी दर्शन प्रकृतिवादी है। आदिवासी समाज धरती, प्रकृति और सृष्टि के ज्ञात-अज्ञात निर्देश, अनुशासन और विधान को सर्वोच्च स्थान देता है। उसके दर्शन में सत्य-असत्य, सुन्दर-असुन्दर, मनुष्य-अमनुष्य जैसी कोई अवधारणा नहीं है, न ही वह मनुष्य को उसके बुद्धि-विवेक अथवा च्मनुष्यताज् के कारण 'महान' मानता है। उसका दृढ़ विश्वास है कि सृष्टि में जो कुछ भी सजीव और निर्जीव है, सब समान है। न कोई बड़ा है, न कोई छोटा है। न कोई दलित है, न कोई ब्राह्मण। सब अर्थवान है एवं सबका अस्तित्व एकसमान है-चाहे वह एक कीड़ा हो, पौधा हो, पत्थर हो या कि मनुष्य हो। वह ज्ञान, तर्क, अनुभव और भौतिकता को प्रकृति के अनुशासन की सीमा के भीतर ही स्वीकार करता है, उसके विरुद्ध नहीं। अन्वेषण, परीक्षण और ज्ञान को आदिवासी दर्शन सुविधा और उपयोगिता की दृष्टि से नहीं देखता, बल्कि धरती, प्रकृति और समस्त जीव-जगत के साथ सहजीवी सामंजस्य और अस्तित्वपूर्ण संगति के बतौर देखता है। मानव की सभी गतिविधियों और व्यवहारों को, समूची विकासात्मक प्रक्रिया को प्रकृति व समष्टि के विरुद्ध नहीं, बल्कि उसके पूरक के रूप में देखता है। उन सबका उपयोग वह वहीं तक करता है, जहाँ तक समष्टि के किसी भी वस्तु अथवा जीव को, प्रकृति और धरती को कोई गम्भीर क्षति नहीं पहुँचती हो। जीवन का क्षरण अथवा क्षय नहीं होता हो। आदिवासी साहित्य इसी दर्शन को लेकर चलता है।

आदिवासी साहित्य सिर्फ शब्दों में लिखित कल्पना, अनुभव, भाव, विचार और यथार्थ की कलात्मक स्वानुभूति या सहानुभूति की अभि-व्यक्ति नहीं है, बल्कि यह मानवीयता सहित समस्त जीव-जगत, प्रकृति और समष्टि का जीवंत दस्तावेज है जो आध्यात्मिक अनुष्ठानों, दैनिक क्रियाकलापों और विविध कलात्मक अभिरूचियों एवं अभिव्यक्ति के विभिन्न रूपों के माध्यम से निरंतर प्रदर्शित होता रहता है। डॉ. नाजिश बेगम लिखती है कि -"आदिवासी साहित्य में आत्मसजग अभिव्यक्तियों का एक ऐसा प्रखर स्वर सम्मिलित है, जो दीर्घ समय से शोषित, उत्पीड़ित और वंचित आदिवासी समाज की चेतना को दिन ब दिन तीव्र और प्रखर बना रहा है। लेखकों ने कविता-कहानी, उपन्यास और नाटकों में आदिवासी जन-जीवन के यथार्थ चित्र प्रस्तुत किए हैं।"[15] समकालीन आदिवासी साहित्य ने उदार-वादी वैश्विक परिदृश्य में समस्याओं से जूझते आदिवासियों के जीवन-संघर्ष एवं चुनौतियों को भी सामने रखा है। आदिवासी साहित्य प्रायः मौखिक रूप में ही परंपरानुसार पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होता रहा है, किन्तु आज समाज में उनकी अभिव्यक्तियाँ लिखित रूप में यथार्थ निरूपण का पुष्ट आयाम बनकर उभरी है। वर्तमान में आदिवासी जीवन और चेतना से संबंधित साहित्य एवं आलोचना साहित्यिक संसार में अपनी पैठ बनाने के दौर से गुजर रही है।

संदर्भ सूची :

1.टेटे, वंदना (सं.), आदिवासी दर्शन और साहित्य, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, 2020, पृष्ठ 19-20

2.सिंह, अविनाश कुमार, कथाक्रम, महानगर विस्तार लखनऊ , अक्टूबर-दिसम्बर 2011, पृष्ठ 16

3.गुप्ता, रमणिका (सं.), युद्धरत आम आदमी, जुलाई-सितम्बर 2007, पृष्ठ 49

4.मीणा, गंगा सहाय (सं.), आदिवासी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ 9

5. मीणा, श्रवण कुमार (सं.), समकालीन विमर्श : बदलते परिदृश्य, अमन प्रकाशन कानपुर, 2019, पृष्ठ 70-71

6. साहनी, भीष्म, कसौटी, अंक –1, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, पृष्ठ 13

7.गुप्ता, रमणिका, (संपादित) दलित हस्तक्षेप, पृष्ठ 19

8. उद्धृत, मीणा, हरिराम, आदिवासी दुनिया, आदिवासी साहित्य अकादमी पाट, गुजरात पृष्ठ 143

9. मीणा, श्रवण कुमार (सं.), समकालीन विमर्श : बदलते परिदृश्य, अमन प्रकाशन कानपुर, 2019, पृष्ठ 22

10. मीणा, गंगा सहाय (सं.), आदिवासी साहित्य विमर्श, संपादक की कलम से

11. टेटे, वंदना, आदिवासी साहित्य : परंपरा और प्रयोजन, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, 2014 पृष्ठ 87-88

12. मीणा, गंगा सहाय (सं.), आदिवासी साहित्य विमर्श, पृष्ठ सं. 10

13. झारखंडी भाषा, साहित्य, संस्कृति अखड़ा के तत्वावधान में 14-15 जून, 2014 को राँची (झारखंड) में 'आदिवासी दर्शन और समकालीन आदिवासी साहित्य सृजन' विषय पर दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी संपन्न हुई। जिसमें आदिवासी समाज व साहित्य के बारे में सही समझ विकसित करने एवं उसका मूल्यांकन करने की बुनियादी शर्तों के रूप में पन्द्रह सूत्रीय तत्वों की पहचान करने की कोशिश की गई है। इसे ही 'राँची घोषणा-पत्र' के नाम से जाना जाता है।

14. टेटे, वंदना (सं.), आदिवासी दर्शन और साहित्य, पृष्ठ 49-50

15. मीणा, श्रवण कुमार (सं.), समकालीन विमर्श : बदलते परिदृश्य, पृष्ठ 55

असिस्टेंट प्रोफेसर,
आर.के.देसाई कॉलेज ऑफ एज्युकेशन वापी,
गुजरात

7 डॉ. रामविलास शर्मा की आलोचना-क्रांति का कवि : निराला

डॉ. नीलम सिंह

'निराला' डॉ. रामविलास शर्मा के प्रिय कवि हैं। तुलसीदास के बाद 'निराला' को ही ये हिंदी का सबसे बड़ा कवि मानते हैं। उन्होंने अपने आलोचनात्मक लेखन की शुरुआत 'निराला' की कविताओं पर लेख लिखकर की थी। निराला की कविताओं से प्रथम परिचय के आनंद का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है कि "अन्य कवियों की तुलना में मुझे निराला वैसे ही लगे जैसे विंध्याचल की तुलना में हिमालय । तब से मेरी उस धारणा में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ।"[1] निराला डॉ. शर्मा के काव्य-बोध के प्रतीक है। 'निराला' (1946) और 'निराला की साहित्य-साधना-2' (1972) पुस्तकों में उन्होंने निराला-काव्य का विस्तृत और गंभीर विवेचन तथा उनकी विचारधारा, भावबोध और कला का वस्तुपरक मूल्यांकन किया है। इस मूल्यांकन में मार्क्सवादी दृष्टि से डॉ. शर्मा ने प्रमाणित किया है कि सिद्धांत का विकास व्यवहार से होता है और आलोचना का विकास सृजनात्मक साहित्य की व्यावहारिक समीक्षा से। निराला-साहित्य के मार्मिक प्रभाव और कलात्मक सौंदर्य के उद्घाटन में डॉ. शर्मा के आलोचनात्मक संघर्ष को देखा जा सकता है।

डॉ. शर्मा ने लिखा है कि "विरोधी गुणों के संघर्ष का द्वंद्व सिद्धांत अपनाकर निराला ने साहित्य के संबंध में जो मान्यताएं स्थिर की थीं, वे आदर्शवाद की विरोधी और साहित्य में यथार्थवाद की पोषक थीं।"[2] निराला की रचनात्मकता का स्रोत उनका भावबोध है और यह भावबोध उनकी विचारधारा से जुड़ा हुआ है। डॉ. शर्मा के अनुसार 'स्वाधीनता प्राप्ति की आकांक्षा' निराला के साहित्य की मौलिक प्रेरणा है: "साहित्यिक जीवन के आरंभ से लेकर आखिरी दौर तक साहित्य के विभिन्न रूपों में और उसके विभिन्न स्तरों पर देश को सुखी, स्वाधीन और समृद्ध देखने की आकांक्षा उन्हें प्रेरित करती है।"[3]

डॉ. शर्मा के अनुसार, "भावबोध और कला की दृष्टि से निराला-साहित्य के अनेक स्तर हैं। इनमें एक स्तर विशुद्ध प्रचारात्मक है जहां इनकी निगाह हिंदी के उन पाठकों पर है जो बहुत कम पढ़े-लिखे हैं किंतु जिनकी राजनीतिक चेतना को निखारना वह अपना कर्त्तव्य समझते हैं।"[4] निराला की यह विशुद्ध प्रचारात्मक शैली बराबर निखरती गई और आगे चल कर इसने स्वच्छ कलात्मक शैली का रूप ले लिया। डॉ. शर्मा लिखते हैं कि "निराला की कविता एक ओर प्रचारात्मक है, और उसका यह रूप निखरता हुआ कलात्मक बनता जाता है; दूसरी ओर उनकी कविता में आस्था का गहरा स्पर्श, परोक्ष को प्रत्यक्षवत् देखने की शक्ति, द्रष्टा की-सी तन्मयता का भाव है जो हिंदी कविता में अन्यत्र दुर्लभ है।"[5]

डॉ. शर्मा के अनुसार निराला की आस्था का

आधार और कर्मों का लक्ष्य भारत है। उनके चिंतन में भारत और भारती एक-दूसरे से अलग नहीं हैं, इसीलिए उनमें द्रष्टा का आलोक और भक्त की विह्वलता है। निराला स्वाधीनता आंदोलन को सामाजिक क्रांति से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ मानते हैं। देश की जनता के सुखी और समृद्ध जीवन के लिए स्वाधीनता की आवश्यकता है। हिंदी में उनकी प्रथम प्रकाशित कविता 'जन्मभूमि मेरी है जगन्महारानी' से लेकर उनके अंतिम काव्य संग्रह 'सांध्यकाकली' की विभिन्न रचनाओं में देश-प्रेम और स्वाधीनता के भावचित्र मौजूद हैं। निराला की भक्ति, धार्मिक आस्था और वेदांत-ज्ञान का आधार भी भारत है।

डॉ. शर्मा ने लिखा है कि "निराला क्रांति के कवि हैं, उस क्रांति के, जिसका लक्ष्य भारत को विदेशी पराधीनता से मुक्त कराना ही नहीं, जनता के सामाजिक जीवन में मौलिक परिवर्तन करना भी है। क्रांतिकारी परिवर्तन की यह आकांक्षा 29 दिसंबर, सन् '23 के 'मतवाला' में प्रकाशित उनकी कविता 'धारा' से लेकर 'सांध्यकाकली' में प्रकाशित अंतिम दौर की शिवतांडव वाली कविता तक अनेक रूपों में भाव-बोध के अनेक स्तरों पर व्यक्त हुई है।"[6] 'धारा' कविता में निराला ने लिखा था :

आज हो गए ढीले सारे बंधन,
मुक्त हो गए प्राण,
रुका है सारा करुणा-क्रंदन।

डॉ. शर्मा के अनुसार यहां करुणा-क्रंदन को रोकना, बंधनों को ढीला करना सामाजिक क्रांति का उद्देश्य है।

डॉ. शर्मा बताते हैं कि निराला की कविताओं में क्रांति के विनाशात्मक और रचनात्मक दोनों पक्षों का चित्रण हुआ है। एक ओर वे 'संहारिणी बड़ी/ उठती अबाध है'-जैसी पंक्तियां लिखते हैं तो दूसरी ओर 'एक पर दृष्टि जरा अटकी है, देखा एक कली चटकी है' भी लिखते हैं। निराला ने क्रांति के चित्रण के लिए अनेक प्रतीकों का उपयोग किया है, जैसे धारा, बादल, शिव और काली, पुराने पत्तों का झरना, नए पत्तों का आना आदि। डॉ. शर्मा ने स्पष्ट किया है कि निराला की क्रांतिकारी भावधारा का स्रोत उनकी गंभीर मानवीय करुणा है। जो दलित और उपेक्षित हैं, वे निराला के स्नेह-भाजन हैं। निराला की कविताओं में क्रांति का सामंतविरोधी और समाजवाद की ओर उन्मुख रूप अनेक स्थलों पर देखा जा सकता है।

डॉ. शर्मा के अनुसार निराला हिंदी साहित्य में नए मानवतावाद के प्रतिष्ठापक हैं। उनका मानवतावाद उनके देशप्रेम और क्रांतिकारी भावना से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है। निराला के मानवतावाद की विशेषताएं हैं-दुःख और पराजय का ज्ञान, संघर्ष की कठिनाइयों और मार्ग के अवरोधों का चित्रण, मनुष्य के धैर्य और उसकी वीरता की अभिव्यंजना।"[7] निराला के इस मानवतावाद के विकास क्रम को समझाते हुए डॉ. शर्मा लिखते हैं कि "धारा', 'आवाहन', 'बादलराग' (6), 'जागो फिर एक बार' (2) और 'महाराज शिवाजी का पत्र-इन कविताओं को इस क्रम से पढ़ा जाए तो निराला के मानवतावाद के विकास की दिशा समझ में आ जाएगी। अतिमानव की जो झलक प्रारंभिक रचनाओं में है, यह क्रमशः क्षीण

होती जाती है; सामान्य मानवता का बोध और गहरा होता जाता है। जैसे-जैसे आंतरिक ग्लानि और पीड़ा का बोध तीव्र होता है, वैसे ही जिन परिस्थितियां से संघर्ष करना है, उनकी रूपरेखा और साफ दिखाई देती है। उसी अनुपात की दृढ़ता, मनुष्य संघर्ष में पैर जमाए रखने की क्षमता भी मानो बढ़ती जाती है।"8 डॉ. शर्मा बताते हैं कि निराला ने साहित्य में जिस मानवतावाद की प्रतिष्ठा की, उसके विकास का इतिहास भारतीय जन आंदोलन के उतार-चढ़ाव का इतिहास है। इस मानवतावाद में भारत की निर्धन और दलित जनता के जीवन संघर्ष की अंतर्धारा व्याप्त है। वे लिखते हैं: "पहले दौर में निराला उस विप्लवी वीर के गीत गाते हैं, जिसमें अतिमानव की झलक है। सन् '30 के बाद की रचनाओं में यह झलक खत्म हो गई है, मनुष्य अपने आंतरिक और बाह्य संघर्षों की पूर्णता में चित्रित किया जाता है। सन् 30-40 के दशक की रचनाओं में निराला की मानवीय सहानुभूति और गहरी होती है, मृत्यु पूर्व-वेला में जीवन की आखिरी दमक का सौंदर्य वह मनुष्य में देखते हैं। दिव्य का भाव पीछे छूट जाता है, मानव-शक्ति का रूप ही आंखों के सामने रह जाता है। दूसरे महायुद्ध के दौरान और उसके बाद एक नई क्रांतिकारी भावना निराला के मानवतावाद में घुल-मिल जाती है। करुणा से अधिक इसमें आक्रोश है; दुःख की अनुभूति से अधिक इसमें सामूहिक संघर्ष की झलक है। स्वाधीन भारत में जनता के क्रांतिकारी उभार समाप्त हो गए; निराला के साहित्य में वह ललक भी न रही किंतु एक थिराई हुई करुणा, जिन मनुष्यों की मुक्ति के सपने उन्होंने सन् '46 तक देखे थे, उनके प्रति गहरी सहानुभूति 'अर्चना' से 'सांध्यकाकली' तक देखने को मिलती है।"[9] निराला के देश-प्रेम, मानवतावाद और क्रांतिकारी भावना को एक साथ देखने पर पता चलता है कि उनके साहित्य में आधुनिक भारत की छवि बहुत गहराई से आंकित हुई है।

डॉ. शर्मा के अनुसार निराला की अनेक रचनाएं समाज और साहित्य दोनों के संदर्भ में सटीक बैठती हैं। निराला समाज में क्रांति लाना चाहते हैं, भाषा और साहित्य में भी उनका यही प्रयास है। साहित्य-जगत् की यह क्रांति एक ओर प्राचीन रूढ़ियों का नाश करने वाली है, दूसरी ओर वह जीवंत साहित्यिक परंपरा की रक्षक भी है। समाज की अपेक्षा साहित्य में परंपरा की रक्षा के प्रति निराला का आग्रह अधिक है। निराला के लिए हिंदी साहित्य-साधना के माध्यम के साथ ही साथ अपने में स्वयं एक साध्य भी है। डॉ. शर्मा के शब्दों, "निराला के मन की आशाएं, उल्लास, विषाद, निराशा, वीरतापूर्ण कर्म त्रास, दुःस्वप्न- यह सब कुछ कहीं न कहीं हिंदी के इस आंतरिक संघर्ष से जुड़ा हुआ है। निराला के बिना हिंदी का यह संघर्ष नहीं समझा जा सकता, इस संघर्ष के बिना निराला नहीं समझे जा सकते; न व्यक्तित्व, न कृतित्व ।"[10] निराला ने छंद की गति, उदात्त शब्द-सौंदर्य और भाव-चित्र की गरिमा से अपने काव्य में आधुनिक हिंदी का ही भविष्य चित्रित किया है।

निराला के सुख-दुःख, सभी भावों की जड़ें खेतों में हैं । यहीं से कल्पना की लताएं आकाश की

ओर विकसित होती हैं। निराला ने वसंत और होली पर कई कविताएं लिखी हैं। डॉ. शर्मा के अनुसार, "वसंत और होली के उल्लास से भारतीय जन-जीवन के उल्लास का संबंध है। निराला धरती और देह दोनों का स्पंदन एक साथ सुनते हैं। उनके एक कविता संग्रह का नाम है-परिमल। यह नाम धरती की गंध और देह के संगीत का प्रतीक है। वस्तुतः "निराला-साहित्य में जिस धरती का बार-बार उल्लेख किया गया है, वह दो तरह की है। एक धरती वह जो पांच तत्वों में एक तत्व है, जिसका गुण गंध है, जो वसंत में युवती-सी सज उठती है, वर्षा में जिसके हृदय में नवजीवन के अंकुर फूटते हैं; दूसरी धरती वह जो निराला के जनपद की परिचित धरती है, जिसमें नदियां, तालाब, खेत, खलिहान हैं, जहां धूल उड़ती है, वर्षा होती है, किसान हल जोतते हैं। वास्तव में धरती एक है-वस्तुगत रूप से ही नहीं, निराला के मन में, आत्मगत रूप से भी। उसे देखने और चित्रित करने के दृष्टिकोण में भिन्नता है।"[11] 'मिट्टी के सबब दूध-ऐसा था पानी' लिखने वाले निराला के काव्य का मूलाधार धरती और जनजीवन है। हास्य-व्यंग्य के साथ-साथ निराला की कविताओं में करुणा, वेदना अथवा आक्रोश के स्वर बराबर मौजूद रहते हैं।

डॉ. शर्मा के अनुसार निराला दुःख, संघर्ष और मृत्यु के कवि हैं। वे लिखते हैं: "जब कड़ी मारें पड़ीं, दिल हिल उठा-सन् '21 में इस कविता से लेकर सन् 61 में पत्रोत्कंठित जीवन का विष बुझा हुआ है तक निराला काव्य में दुःख, संघर्ष और मृत्यु का यह क्रम बराबर चलता रहा है।"[12] निराला के दुःख के दो प्रमुख कारण हैं-एक तो समाज और साहित्य में उसका विरोध और दूसरा आर्थिक कारण, उनके जीवन में साधारण सुख-सुविधाओं का अभाव : "पक्ष दो हैं-आर्थिक और सांस्कृतिक, उनसे निर्मित इकाई है निराला का परिवेश ।'[13] निराला की रचनाओं में दुःख से मुक्ति पाने के लिए अपने सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश से लगातार संघर्ष के स्वर सुनाई देते हैं। एक तरफ परिवेश से संघर्ष और दूसरी तरफ अपने भीतर के संघर्ष-निराला में अंतर्द्वंद्व के दो स्वर हैं । डॉ. शर्मा के अनुसार, निराला अपने मन में जो दुःख, क्षोभ और ग्लानि के भाव दबाते हैं, उनमें सबसे विकट है अपमान का भाव।"[14] निराला अपमान की भावना को नियंत्रित रखना चाहते हैं लेकिन वह बार-बार नैतिक मर्यादा तोड़ देती है। निराला व्यथित होकर भी उस अपमान की ज्वाला को अपने जीवन की प्रेरणा और शक्ति बना लेते हैं। यही कारण है कि निराला काव्य में दुःख और मृत्यु की भावनाओं के बावजूद दैन्य का भाव नहीं है। पराजय में भी विजयाकांक्षी स्वर उनकी रचनाओं में धीमा नहीं होता है।

डॉ. शर्मा ने 'निराला की साहित्य -साधना' के द्वितीय खंड में निराला की विचारधारा और भावधारा के साथ-साथ उनकी कला का भी विस्तृत विवेचन किया है। विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत निराला की वक्तृत्वकला, स्थापत्य, प्रतीक-योजना, बिंब-योजना, ध्वनि-प्रवाह, शब्द-सौंदर्य, अर्थ-चमत्कार आदि का विश्लेषण करते हुए डॉ. शर्मा ने निराला की काव्यकला को उनके भावबोध से संबद्ध माना है। उन्होंने निराला की

उद्बोधनात्मक कविताओं का संबंध स्वाधीनता आंदोलन के भाषण से जोड़ा है। निराला की वक्तृत्वकला का विवेचन करते हुए उन्होंने दिखाया है कि निराला इस कला का विकास नाटकीयता और चित्रात्मकता के माध्यम से करते हैं। निराला इस वक्तृत्वकला का भरपूर उपयोग अपने गीतों और लंबी कविताओं में करते हैं। इस कला की विशेषता काव्य का ओजपूर्ण प्रवाह है। डॉ. शर्मा ने लिखा है कि "निराला की वक्तृत्वकला उनके भावबोध से संबद्ध है। यह उस कवि की कला है जो अंतर्मुखी होकर एकांत जीवन नहीं बिताता वरन दूसरों का सामना करता है, उन्हें प्रभावित करताहै।"[15] वक्तृत्वकला की तरह स्वगत -कथन की कला का भी निराला के मुक्तकों, गीतों और लंबी कविताओं में महत्वपूर्ण स्थान है। डॉ. शर्मा बताते हैं कि स्वगत कथन की "कला द्वारा वह दार्शनिक स्तर पर विरोधी विचारों का संघर्ष, भावात्मक स्तर पर मन के संशय और द्विधा स्थिति का चित्रण करते हैं। निराला जिस तरह स्वगत-कथन में अपने मन की द्विधापूर्ण स्थिति, संशय, ग्लानि आदि व्यक्त करते हैं उसी तरह संवाद शैली में, दूसरों से तर्क करते हुए अपने मन का आक्रोश, क्षोभ अथवा विश्वास प्रकट करते हैं।"[16]

डॉ. शर्मा ने निराला की कविताओं की संरचना का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि "आदमी जैसा नक्शा बनाता है, फिर नक्शे के अनुसार मकान बनाता है, वैसे निराला पहले नक्शा बनाते हैं, फिर कविता रचते हैं। कोई काम वह हमेशा एक ही ढंग से नहीं करते, यह रचना-पद्धति भी वह छोड़ देते हैं। फिर भी उनकी बहुत-सी कविताओं में उनका नक्शा पहचाना जा सकता है।"[17] निराला की कविताओं के विश्लेषण के आधार पर डॉ. शर्मा ने दिखाया है कि कविता का ढांचा बनाने की यह पद्धति कई जगह उनकी कला के उत्कर्ष में सहायक होती है और कई जगह नहीं भी। निराला की अनेक कविताओं में उनका परिचित संरचनाक्रम और तर्क योजना टूट जाती है। डॉ. शर्मा का विचार है कि यह भी निराला की काव्य-कला की एक विशेषता है, जिसमें किसी-न-किसी रूप में व्यंग्य रहता है। कविता की संरचना में अंतर्निहित इस व्यंग्य के माध्यम से वे अपनी कविताओं में विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

डॉ. शर्मा ने निराला की कविताओं के स्थापत्य और आंतरिक संरचना का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए यह दिखाया है कि किस तरह निराला अपने काव्य की रचना सामग्री-भाषा का प्रयोग शब्दों के अर्थ-विस्तार, सांकेतिक व्यंजना, चित्रात्मकता और ध्वनि-प्रवाह के लिए करते हैं। रचना-सामग्री के प्रयोग की विविधता और उससे उत्पन्न काव्य-सौंदर्य का अंतर निराला की कई कविताओं में देखा जा सकता है। डॉ. शर्मा के अनुसार, 'तुलसीदास' और 'राम की शक्तिपूजा' में जो स्थापत्य-सौंदर्य और गहराई है वह 'अणिमा' की कविता 'स्वामी प्रेमानंद जी महाराज', 'अनामिका' की कविता 'सेवा प्रारंभ' और 'नए पत्ते' की कविता 'स्फटिक-शिला' में नहीं है, जबकि ये सभी लंबी कविताएं हैं। इनके रचना-कौशल में भेद का कारण कविता के माध्यम भाषा का भिन्न पद्धति से उपयोग है। 'तुलसीदास' और 'राम की शक्तिपूजा में निराला एक गरिमामय इमारत बनाना चाहते थे, इसलिए वहां वे छंद-प्रवाह, मूर्ति-विधान,

शब्द-ध्वनि, सांकेतिक अथवा स्पष्ट व्यंजना सबको नियंत्रित रखते हैं। इस नियंत्रण द्वारा वह अपने माध्यम में घनत्व पैदा करते हैं और कविता को सीधी रेखा में बढ़ने से रोक कर दाएं-बाएं स्थान घेरते चलते हैं। इन दोनों प्रकार की कविताओं की शैली में अंतर है। स्वामी प्रेमानंद जी महाराज या वैसी ही अन्य कविताओं में उद्देश्य कविता की रचना भव्यता से प्रभावित करना नहीं है जैसे 'तुलसीदास' या 'राम की शक्तिपूजा में ।"[18]

डॉ. शर्मा ने लिखा है: "निराला में परोक्ष को प्रत्यक्षवत् देखने की अद्‌भुत प्रतिभा है। यह प्रतिभा यथार्थबोध की विरोधी हो, यह आवश्यक नहीं। निराला के स्वप्न में जहां बिखराव नहीं है, दृष्टि केंद्रबद्ध है, केंद्र पार्श्वभूमि से संलग्न है, पार्श्वभूमि से हटकर केंद्र इधर-उधर घूमता नहीं है, वहां उनकी निर्माणकला अनुपम है।"[19] निराला के इंद्रियबोध के संबंध में डॉ. शर्मा लिखते हैं कि "निराला की काव्य-कला की नियामक हैं उनकी वृत्तियां, रूप-रस गंध-स्पर्श-शब्द के संसार को ग्रहण करने की विधि इस संसार के प्रति उसके भावबोध की प्रक्रिया |"[20] ये वृत्तियां निराला की कविताओं में इंद्रियबोध का ऐसा सूक्ष्म ताना-बाना रचती हैं कि उससे अलग करके उनके गठन और रचना-कौशल को नहीं समझा जा सकता। इसलिए यह कहना उचित होगा कि यहां कला और भावबोध की सीमाएं बहुत कुछ मिट जाती हैं। कविता की विषयवस्तु और कला यहां मिल जाती हैं।

निराला की प्रतीक योजना के संबंध में डॉ. शर्मा का मत है कि रूप-रस-गंध संबंधी परंपरागत और पूर्ववर्ती साहित्य से लिये गए अनेक बिंबों का उपयोग निराला ने अधिकतर प्रतीक रूप में किया है। लेकिन अनेक स्थानों पर उन्होंने इन प्रतीकों का मौलिक और चमत्कारी प्रयोग भी किया है। निराला अक्सर एक से अधिक प्रतीकों का उपयोग एक ही स्थान पर करते हैं। डॉ. शर्मा ने निराला के बिंब-विधान के विश्लेषण में बताया है कि वे फूलों की गंध पर जितना रीझते हैं उतना पक्षियों के स्वर पर नहीं। निराला-काव्य में जितने फूल हैं, उतने पक्षी नहीं हैं। डॉ. शर्मा के अनुसार निराला का इंद्रियबोध पेचीदा है। वर्ण गंध बन जाता है, गन्ध स्वर और स्वर अग्नि। उनका मूर्ति विधान खंड-सत्य प्रस्तुत न करके मानव-प्रकृति का संश्लीष्ट यथार्थ गहराई से चित्रित करता है।

डॉ. शर्मा बताते हैं कि निराला को अनुप्रास बहुत प्रिय है, अतुकांत रचनाओं में भी वह उनका प्रयोग करते हैं। यह अनुप्रास-कविता उनकी क्रीड़ा वृत्ति की परिचायक है, साथ ही यह उनकी संगीत-रचना का अभिन्न अंग है। डॉ. शर्मा ने निराला की काव्य-कला के विश्लेषण में ध्वनि प्रवाह की ओर विशेष ध्यान दिलाया है। उन्होंने लिखा है: "निराला काव्य में मूर्ति विधान का सहायक तत्व है ध्वनि-प्रवाह इन दोनों का सामंजस्य उनकी कला की विशेषता है। किंतु जब-जब मूर्ति विधान कमजोर होता है, ध्वनि-प्रवाह उस कमजोरी को दूर करके स्वयं उसका स्थान ले लेता है। शब्दों की ध्वनि प्रतीक-योजना में सहायक होती है, स्वयं भी जहां-तहां प्रतीक बन जाती है। छंद की गति से नियंत्रित ध्वनि-प्रवाह ये सारे कार्य संपन्न करता है।"[21] ध्वनि-प्रवाह छंद की गति से नियंत्रित होता है, छंद पर निर्भर नहीं

होता। ध्वनि-प्रवाह की भंगिमाओं से वह जीवन और जगत् के विभिन्न क्रिया-व्यापारों को चित्रित करते हैं। डॉ. शर्मा के अनुसार निराला काव्य व्यंजन-प्रधान है लेकिन उसमें स्वरों का महत्वपूर्ण स्थान है। स्वरों के अदृश्य के ढांचे में ही व्यंजन मजबूती से जड़े होते हैं।

निराला भावों की मुक्ति के लिए छंद की मुक्ति भी आवश्यक मानते थे, परंतु उन्होंने अधिकांश कविताएं मुक्तछंद के बदले बंधनयुक्त छंद में रची हैं। डॉ. शर्मा ने निराला के इस अंतर्विरोध की जानकारी देने के बाद लिखा है कि "भाव, भाषा और छंद न पूरी तरह मुक्त होते हैं, न पराधीन। ... छंद में बंधन और मुक्ति दोनों हैं, इनका संतुलन बिगड़ने पर छंद या तो ध्वनि की यांत्रिक आवृत्ति बन जाएगा या अतिशय मुक्ति से पीड़ित होकर अव्यवस्थित शब्द-जंजाल बन जाएगा।"[22] निराला यह भी मानते रहे हैं कि मुक्त छंद कवित्त के आधार पर ही सफल हो सकता है। निराला में अलंकरण की प्रवृत्ति भी है लेकिन वे अलंकारों का प्रयोग सजावट से अधिक भावोत्कर्ष के लिए करते हैं।

निराला की काव्य-भाषा और शब्द-योजना का विश्लेषण करते हुए डॉ. शर्मा लिखते हैं कि "निराला ने अपनी भाषा गढ़ी है, जो भाषा सुनी और पढ़ी उसका अनुसरण भी किया है। दोनों स्थितियों में उनके शब्द-संसार के अपने नियम हैं, निराला का अनौचित्य अपने इस शब्द -संसार के नियमों का उल्लंघन करने में है। निराला ने भाषा गढ़कर हिंदी को नई व्यंजना-शक्ति दी है, सुनी और पढ़ी भाषा का अनुसरण करके हिंदी की अंतर्निहित शक्ति उद्घाटित की है। निराला के शब्द -संसार में ध्वनि की तरंगें उठती हैं, जहां ये तरंगें भाव और मूर्ति विधान के साथ ऊपर उठती हैं, वहां निराला के कलात्मक उत्कर्ष का जवाब नहीं। वह सीधे-सादे हिंदी शब्दों से ऐसा दुःख व्यक्त करते हैं कि उसकी गहराई के आगे सारी उदात्त शब्दावली फीकी लगती है। निराला हिंदी की शक्ति उस तरह की शब्दावली से भी प्रकट करते हैं जो साधारणतः कवित्वहीन और कठोर मानी जाती है।"[23] इस प्रकार हम देखते हैं कि निराला की काव्य-भाषा में विविधता के साथ-साथ विभिन्न स्तरों पर अद्‌भुत कलात्मकता और सर्जनात्मकता है।

'निराला की साहित्य-साधना' के दूसरे खंड में डॉ. शर्मा ने निराला की विचारधारा, भावबोध और कला का गहन विश्लेषण करके निराला-साहित्य की विशेषताओं और अंतर्विरोधों को उजागर किया है। वे निराला को विश्वजनीन भावबोध और विराट चित्रों का चितेरा कवि निरूपित करते हैं। उनके अनुसार संपूर्ण निराला काव्य को तीन चरणों में बांट कर देखने पर उनकी कला के विकास को अधिक अच्छी तरह समझा जा सकता है। पहला चरण सन् '20 से 36 तक-जन्मभूमि' वाली कविता से लेकर 'राम की शक्तिपूजा' तक, दूसरा चरण सन् '37 से सन् '46 तक- 'वनवेला' से लेकर युवकजनों की है जान; खून की होली जो खेली तक, तीसरा चरण सन् '50 से सन् 61 तक-अर्चना के गीतों से लेकर पत्रोत्कठित जीवन का विष बुझा हुआ है तक इन तीनों चरणों में बहुत-सी बातें सामान्य हैं, कुछ भिन्न हैं। निराला इन तीनों चरणों में कल्पनाशील हैं, यथार्थद्रष्टा हैं और अंतर्मुखी हैं, किंतु कल्पना-

शीलता, यथार्थदर्शन और अंतर्मुखी होने के तरीके अलग-अलग हैं। डॉ. शर्मा ने निराला काव्य के विवेचन में दिखाया है कि निराला की कला का संबंध उनकी विचारधारा और भावबोध से है। निराला छायावाद के प्रमुख कवि हैं। अन्य कवियों में विचारधारा, भावबोध और कला से संबंधित अंतर्विरोध जहां इतने स्पष्ट नहीं हैं वहीं निराला में वे बहुत स्पष्ट रूप में उभर कर सामने आते हैं। डॉ. शर्मा ने निराला के साहित्य में दिखाई देने वाले इन अंतर्विरोधों को उनके काव्य की विशेषताओं के साथ प्रस्तुत करते हुए सुसंगत ढंग से स्थापित किया है कि निराला इन अंतर्विरोधों को पार करते हुए अपनी क्रांतिकारी चेतना और मानवतावाद के आधार पर अपनी रचनाओं में यथार्थवाद का विकास करते हैं।

डॉ. शर्मा ने निराला-काव्य के विस्तृत विवेचन के साथ-साथ छायावाद के अन्य प्रमुख कवियों प्रसाद, पंत और महादेवी के काव्य पर भी यथेष्ट विचार करते हुए उसके प्रगतिशील तत्वों को उजागर किया है। छायावादी कवियों के अवदान को रेखांकित करते हुए उन्होंने लिखा है कि "छायावादी कवियों ने कविता की भाषा के रूप में खड़ी बोली को प्रतिष्ठित किया; काव्य से चमत्कारवादी, नायिकाभेदी परंपरा को निर्मूल किया है; प्रकृति, नारी, सामाजिक परिवर्तन आदि विषयों पर नए दृष्टिकोण से लिखा; भारत-भारती और जयद्रथवध के युग की तुलना में उन्होंने हमारा सौंदर्यबोध परिष्कृत किया, नई छंद-योजना, नए मूर्ति विधान से हिंदी कविता को समृद्ध किया है।"[24] डॉ. शर्मा के अनुसार छायावाद के उत्तरकाल में छायावादी कवियों में यथार्थवाद का विकास होता है। छायावादी कवि अपनी कविता में स्वप्नलोकवाली कल्पना के अंश को छोड़ कर यथार्थ जीवन की कठोर भूमि से काव्य-सामग्री ग्रहण करने का प्रयास करते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ:

1.रामविलास शर्मा 'रूप तरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 1990, भूमिका,

2. रामविलास शर्मा, 'निराला की साहित्य-साधना-2', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1972, पृष्ठ 126

3. वही, पृष्ठ 147-148

4. वही, पृष्ठ 153

5. वही, पृष्ठ 154

6. वही, पृष्ठ 169,

7. वही, पृष्ठ 166

8. वही, पृष्ठ 169

9. वही, पृष्ठ 172

10. वही, पृष्ठ 213-214

11. वही, पृष्ठ 239

12. वही, पृष्ठ 240 107. वही, पृष्ठ 249

13. वही, पृष्ठ 276

14. वही, पृष्ठ 285

15. वही, पृष्ठ 286

16. वही, पृष्ठ 293

17. वही, पृष्ठ 302

18. वही, पृष्ठ 309

19. वही, पृष्ठ 315
20. वही, पृष्ठ 327
21. वही, पृष्ठ 336-337
22. वही, पृष्ठ 345 118. वही, पृष्ठ 423
23. वही, पृष्ठ 408
24.रामविलास शर्मा, 'आस्था और सौंदर्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली सं.1990, पृष्ठ 168

असिस्टेन्ट प्रोफेसर (हिंदी)
संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी,
उत्तर प्रदेश, भारत

8

मॉरीशसीय रचनाकार : रामदेव धुरंधर (छह खंडीय उपन्यास 'पथरीला सोना' में भोजपुरी का प्रभाव)

डॉ. अलका धनपत

श्री रामदेव धुरंधर मॉरीशसीय हिन्दी साहित्य के जाने-पहचाने हस्ताक्षर हैं। लेखक की मातृभाषा भोजपुरी है। आपका समस्त लेखन हिंदी में है। लघु-कथाओं की रचना तथा उपन्यास विधा पर आपने कुशलतापूर्वक कलम चलाई है। लेखक का जन्म मॉरीशस के कॉरोलीन गाँव में 11 जून, सन् 1946 को हुआ था। लेखक ने गुलाम मॉरीशस तथा 1968 में स्वतंत्र मॉरीशस के युग को जिया है। आपने महात्मा गांधी संस्थान, मॉरीशस के सृजनात्मक एवं प्रकाशन विभाग में उप संपादक पद से अवकाश प्राप्त किया था। कघु-कथाओं तथा उपन्यासों के अतिरिक्त आपने स्थानीय रेडियो के लिए एकांकी भी लिखे थे। भारत की अनेक प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में आपकी कहानियाँ छप चुकी हैं। आपका उपन्यास 'बनते-बिगड़ते-रिश्ते' एच. एस. सी. केम्ब्रिज के हिंदी पाठ्यक्रम में भी लग चुका है। आपके लघु कथा संग्रह हैं : 'विषमंथन' (1995), 'चेहरे मेरे तुम्हारे' (1998), 'यात्रा साथ-साथ' (1999) 'एक धरती एक आकाश' (2004), 'आते-जाते लोग' (2005), 'पापी-स्वर्ग' (2006), 'मैं और मेरी लघुकथाएँ' (दो भागों में : 2012)। इन दो खंडों में 1414 लघु कथाएँ संग्रहीत हैं। उपन्यासों में 'छोटी मछली, बड़ी मछली', 'चेहरों का आदमी', 'पूछो इस माटी से', बनते-बिगड़ते रिश्ते', 'आखिरी गली के बाशिंदे' तथा 'पथरीला सोना', (छह खंड) प्राकाशित हो चुके हैं।

लेखक के व्यंग्य संग्रह हैं – 'कलजुगी करम धरम', 'बंदे, आगे भी देख', चेहरों के झमेले'। आपके नाटक 'इतिहास का दर्द' का फ्रेंच में भी अनुवाद हो चुका है। लेखक रामदेव धुरंधर सातवें विश्व हिन्दी सम्मेलन, सूरीनाम में हिन्दी के मंच से सम्मानित भी हो चुके हैं। 'चेहरे मेरे तुम्हारे' पुस्तक की भूमिका में लेखक लिखते हैं: 'मॉरीशस में रहकर भारत में पुस्तकें प्रकाशित करवाना मेरे लिए सहज नहीं है। असहजता से गुज़रकर जैसे-तैसे हम हिन्दी से जुड़े हुए हैं और कुछ न कुछ लिख रहे हैं। अनुरोध है, हमारे हिन्दी-प्रेम को पहले देखिए और हमारी हिन्दी लेखन प्रतिक्रिया को पहले तोलिए। तब हमारी खामियों में भी आपको हमारी साहित्यिक भावना अच्छी लगेगी।' (भूमिका, 1998) लेखक की हिन्दी, हिंदुस्तानी शैली के अधिक करीब है। उनकी भाषा प्रवाहमयी है पर उसमें उर्दू के शब्द अधिक हैं।

लेखक के उपन्यासों में टूटते सामाजिक संबंध तथा राजनीति का कुरूप चेहरा उभर कर आया है। 'पथरीला सोना' उपन्यास पूर्व के उपन्यासों से कुछ हटकर है। यह उपन्यास छह खंडों में 'हिन्दी बुक सेंटर' से प्रकाशित हुआ है। इन छह खंडों में लेखक ने मॉरीशस के 175 वर्षों के इतिहास को समेटा है। यह इतिहास काल 1834 से 2009 तक का है। खंड एक से तीन सन् 2008 में प्रकाशित हुए तथा खंड चार से छह 2012 में प्रकाशित हुए। खंड एक से तीन में लेखक ने 1834 से 1912 तक के कालखंड को तथा खंड चार में 1948, खंड पाँच में 1968 तथा खंड छह में 2009 की देश की गतिविधियों को लिया है। इस छह खंडीय उपन्यास की कुल पृष्ठ संख्या 2853।

'पथरीला सोना' मॉरीशस का पहला उपन्यास है जो ऑन लाइन भी उपलब्ध है। 'पथरीला सोना' उपन्यास का प्रारम्भ इतिहास के जिस कालखंड से होता है, वह गिरमिटिया समाज का समय है। भारत से बहला-फुसला कर गरीब लोगों को यहाँ लालच दे कर लाया गया था। वह सन् 1834 का समय था। यूरोप में गुलामी की प्रथा कानूनन समाप्त हो चुकी थी।

मॉरीशस में भी 1834 में गुलामी प्रथा के समाप्त हो

जाने के कारण अंग्रेज़ों को खेती हेतु मज़दूर चाहिए थे। अत: एक एग्रीमेंट के अंतर्गत भारत से गरीब किसान, मज़दूर धोखे से यहाँ लाए गए थे। शर्तबंद मज़दूर ही गिरमिटिया कहलाए। गिरमिटिया शब्द अंग्रेज़ी के 'एग्रीमेंट' का ही अपभ्रंश रूप है।

इन गिरमिटियों की बोली भोजपुरी थी। ये अधिकतर बिहार तथा उत्तर प्रदेश के सीमावर्ती जिलों से लाए गए थे। भारत से आरकाटी एजेंट इनको बहला-फुसला कर समुद्री जहाज़ से यहाँ भेजते रहे। एजेंट जो इन्हें रटा देते थे उसे ये 'इमीग्रांट डिपो' पर दोहरा देते थे। एक उदाहरण द्रष्टव्य है : I (Thomas Evan's, a Baptist Missionary at Allahabad, 18th Feb, 1871) am told on good authority that this Buldeo has eight men out on the watch to pick up coolies' men and women and specially those who have come over the River Jamuna, on pilgrimage and he gives us these one rupee each person. They can bring into his net. I need not dear. Sir tell you that when all this is done in the name of Government how bitter the families of these poor people must feel… Buldeo shouted in our presence before all, *'Ham Sarkar ke hokum karte hain. Hum Sarkar ke nawkar hain.'*

This story was reported in the pioneer newspaper of Allahabad, and was reproduced in the London Standard (05th April, 1871) under the heading 'An Indian Slave Trade'

The Export of Indian Labour Overseas –1830 – 1920

A New System of Slavery(Hugh Tinker)

इन शर्तबंद मज़दूरों को यहाँ आने पर गुलामों से भी बदतर जीवन जीने के लिए मज़बूर होना पड़ा। ये गिरमिटिया अपने साथ अपनी भाषा, अपनी संस्कृति, अपनी लोक परम्पराएँ भी लाए थे। उपन्यास में भोजपुरी भाषा का सर्वत्र प्रयोग द्रष्टव्य है। यह प्रयोग बड़ा ही सहज है। लेखक की भाषा में भोजपुरी के शब्द, पद, वाक्य तथा अनुच्छेदों की छटा दिखाई देती है। भोजपुरी का यह प्रयोग पात्रानुकूल, परिस्थिति अनुकूल तथा देशकालगत दिखाई देता है। प्रथम खंड का प्रारम्भ ही भोजपुरी संवाद से होता है। समुद्री जहाज़ की लंबी और कठिन यात्रा को तय कर कुछ शर्तबंद मज़दूर मॉरीशस पहुँचते हैं तब उनका पूर्व में आए गिरमिटिया मज़दूरों से संवाद होता :

कहाँ से इतना लोग आवत बाटे ?
समझे के बहुत कठिन हो रहल बा।
अरे मोर भाई, तू त ओहि भासा बोलत बाड़े,
जोन भासा हमनी बोली ल
सो.ई देख के बड़ा सुकून पहुँचल।
का कर बा भैया तकदीर में इहि लिखित होई।
हमनीं के फंसावे ओला बहुत बेरहम हवन सा।

(पृ - 2)

डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल लिखते हैं, *'लोक का जितना जीवन है उतना ही लोकवार्ता का विस्तार है, लोक में बसने वाले जन, जन की भूमि और भौतिक जीवन तथा तीसरे स्थान में उस जन की संस्कृति – इन तीनों क्षेत्रों में लोक के पूरे ज्ञान का आविभवि होता है और लोकवार्ता का संबंध भी उन्हीं के साथ है।'*

(पृथ्वीपुत्र, पृ० 75)

'पथरीला सोना' में लोकवार्ता थी। आपस में जो बातचीत है उसमें भोजपुरी का अंश काफ़ी है। भारत से बहुलता से जिस क्षेत्र से शर्तबंद मज़दूर लाए गए थे, वे सभी भोजपुरी बोलते थे। इनकी संख्या अधिक होने के कारण उस समय के तमिल तथा चीनी भी इसी भाषा को सीख गए। आज भी देश की राजधानी पोर्ट लुइस की दुकानों के बूढ़े चीनी मालिक या मालकिन भोजपुरी में बात करते हैं। मॉरीशस में आज भी भोजपुरी ज़िंदा है पर वह ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक बोली जाती है। वह भी दादी-नानी पीढ़ी में। हाँ! इधर कुछ वर्षों से भोजपुरी गीतों

पर नई पीढ़ी, उत्सवों आदि पर थिरकने लगी है। 'गमट' आज भी सुना जाता है। लेखक रामदेव धुरंधर आत्मकथ्य में लिखते हैं : *'मॉरीशस के एक साधारण ग्रामाञ्चल में जन्म पाकर यहीं जीवन की सीढ़ियाँ चढ़ता गया। अपनी पुश्तैनी ज़मीन यहीं होने से मेरी जड़ यहीं हुई और इस उम्र में अपने को चेतन कहूँ तो भी ज़मीन यही है। लिखने का शौक हिन्दी में ही पैदा हुआ, लेकिन सोच की आत्मा भोजपुरी थी।'*

(पथरीला सोना भाग – I)

आगे प्रवेश द्वार में लेखक लिखते हैं, *'विशेषकर बिहार प्रांत से लोगों के मॉरीशस आने में बहुलता रही, इसलिए मैंने विशेष कर इन्हीं लोगों की भाषा, रीति-रिवाज़ और संस्कार को केन्द्रित किया है। भोजपुरी तो मेरी मातृभाषा है ही। बिहार से आए हुए लोगों की इस परंपरा को आज भी महसूस करने की मेरी ऊर्जा का यही रहस्य है।'*

(पथरीला सोना – I)

प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक चोम्स्की के अनुसार *'अपने वातावरण में फैली विविध संरचनाओं और शैलीगत विभिन्नताओं से युक्त तरह-तरह के वाक्यों के भीतर से बालक मन सहज वाक्य और आधारीकृत नियमों का पता लगा लेता है।'*

(हिन्दी का सामाजिक संदर्भ, पृ० 01)

'हिन्दी के सामाजिक संदर्भ' की भूमिका में रवींद्र श्रीवास्तव लिखते हैं: *'भाषा व्यवस्था के रूप में 'लाँग' और भाषा-व्यवहार के रूप में 'पारोल' एक दूसरे का संदर्भ लेकर ही परिभाषित किए जा सकते हैं। व्यक्ति, भाषा-व्यवस्था को भाषा व्यवहार की विविध घटनाओं के आधार पर ही आत्मसात करता है।'*

(पृ० 01)

पथरीला सोना में प्रयुक्त भोजपुरी, उपन्यास की कथा तथा पात्रों को मज़बूत बनाती है। उपन्यास में प्रयुक्त भोजपुरी कहीं-कहीं पर अशिष्ट तथा अश्लील भी हो गई है। यह उस समय की बोली जाने वाली भारतीय आप्रवासियों की बोली थी। मैंने कई वृद्धों से भी इस अश्लील शब्दावली के बारे में पूछा। उनके अनुसार ऐसी भाषा का प्रयोग होता था। अत: लेखक ने लोक भाषा के सहज रूप को रखा है जो उस बीते कल को भी अभिव्यक्त करती है। यह भोजपुरी बोली सामाजिक प्रयोग के आधार पर ऐतिहासिक और जीवंत है।

मदिर पात्र गाता है --

दुख दे गइल दुसमनवा,
कैसे टिकी अब परनवा,
बिनती करत ई मदिरवा,
दु:ख हरगे मोर भगवनवा।

'भाषा एक सामाजिक यथार्थ है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। भाषा सामाजिक मनुष्य के संप्रेषण का एक ऐसा माध्यम है जिसकी सहायता से वह विशेष परिस्थिति में विशिष्ट प्रयोजन की सिद्धि हेतु इसका प्रयोग करता है और वह प्रयोग इसी संदर्भ एवं परिस्थिति में अर्थ ग्रहण करता है। कौन, कब, किसने, किस विषय पर, कहाँ बातचीत कर रहा है, ये सब भाषा के सामाजिक संदर्भ हैं जिनसे भाषा संदर्भित होती है अर्थात् वय, लिंग विषय, जाति, वर्ग, स्थान, संस्कृति एवं प्रयोजनों आदि के कारण भाषा में परिवर्तन होते हैं।

(हिन्दी का सामाजिक संदर्भ, पृ० 37)

लेखक रामदेव धुरंधर के उपन्यास 'पथरीला सोना' के प्रथम तीन खंडों में भोजपुरी बोली का अधिक प्रभाव है। उस काल खंड में 1834-1912 तक भारतीय आप्रवासी भोजपुरी ही बोलते थे। सबसे पहला हिन्दी में सार्वजनिक भाषण मणिलाल डॉक्टर ने मॉरीशस में दिया था। उन्हें गांधी जी ने आप्रवासी भारतीयों की दुर्दशा को देखते हुए, मॉरीशस भेजा था। वे एक वकील थे तथा वे मॉरीशस में सन् 1907 से 1911 तक रहे। उन्होंने ही मॉरीशस में औपचारिक रूप से आर्य समाज की भी स्थापना (सन् 1910) की थी। मॉरीशस का पहला पत्र 'हिंदुस्तानी' (1907) भी उन्होंने ही निकाला था।

उपन्यास के IV से VI भाग में भोजपुरी का प्रभाव तो है पर अपेक्षाकृत कम प्रयुक्त की गई है। इससे स्पष्ट होता है कि जैसे-जैसे देश में स्वतंत्रता के बाद शिक्षा का प्रचार-प्रसार होने लगा, भोजपुरी उपेक्षित होने लगी और धीरे-धीरे देश की मातृभाषा क्रियोल बन गई। आज भोजपुरी पुरानी पीढ़ी की बोलचाल में है पर गीतों का प्रचार खूब है जैसे, *"तोहर से लोतो नहीं मांगब एक गो फटफटिया कीन दे हमर जान"*

ठाकुर कहता है –

"लोग मुझे इस तरह आँखों चिहार कर देखें मुझे अच्छा नहीं लगता, समझो करेजवा में छक से तीर लगकर छूकसे उस पार निकल जाते हैं। फटफटिया मेरी है तो मेरी है, लोग क्यों लार टपका रहे हैं, शुक्र है मेरी सेठानी को दवा आती है। मिर्च से औंछ कर बीमारी को रफूचक्कर कर देगी।"

(भाग 3, पृ० 21)

यह फटफटिया शब्द आज भी लोक में प्रचलित है। यह एक आधुनिक भोजपुरी गीत है। लोतो का अर्थ है मोटर तथा कीन का अर्थ है खरीदना।

कुछ अन्य उदाहरण-

"ठकुरी के खेत का नाम पतुरिया खेत है"

(भाग 3, पृ० 127)

"शाम को संध्या करना, दिनभर यह जो बोला बतियाया मन में पैठा ही रह गया तो उतर जाएगा"

(भाग 3 पृ० 214)

उपन्यास के खंड एक तथा दो में कुछ इस प्रकार के उदाहरण मिलते हैं।

इन्द्रधनुष मानों मुंह बिराकर उनके सर के ऊपर उड़ते दूर निकल जाता था।

चिड़िया के पंखों में लासा डालना।

शरीर में घाव बजबजाना, कौर चुभलाना, सिर फुटौव्वल, टांग-अड़ाई

बहू का गौना कर लाते हैं।

फिर धानी से गलचौर करती।

अपने गाँव के लजौनी घाट पर उसे अपना तैरना याद आ गया।

उसने देवन्ती के जोबन पर थूककर उसे ढेर सारी गालियाँ ओढ़ा दीं।

फतुही सूख गई थी।

महिलाएँ जब इकट्ठे बैठती थीं तो वे आपस में हल्के-फुल्के मज़ाक भी किया करती थीं। जैसे-

घर में बहुरिया है देवरा, बाहर में झांका झूंकी अब तो बंद समझो।

कान में कपड़ा ठूंस ले मैया मैं तो बोलकर रहूँगी,

अब यही तुम्हारी टेढ़ाई है तो तुम्हारे भतार लछना को मैं सब सुनाऊँगी मोटी लकड़ी से अब तोहार पिटाई होव तो सात द्वार मरद की कीर्ति गाते फिरना।

(पृ 76 पा 1)

सुखार से खेत जेल रहे थे।

नाक से नेटा बहता रहता है, सिर से लीख ढील निकालना।

मक्की तोड़कर चुभलाने में आनंद है।

नमक मिर्च से औंछना।

हांकू डांकू, बात चलौनी, धरम खउआ, खून पीवा, खखोरनी।

मूतपीवा मुझे बददुआ देता है।

गोड़ लंबा करे तो काट डालूँगा।

उसने बहू से कह रखा था कि पेट से छोकरी गिराएगी तो उसे बच्ची समेत आँगन में खदेड़कर दरवाजा बंद कर लेगी।

लेकिन कुछ महिलाएँ शासकों की मदद करती थीं। वे स्वयं तो बिकी ही हुई थीं पर दूसरों की बहू-बेटियों पर भी नज़र रखतीं थीं। खंड एक में आई पात्रा रूपमती ने तो स्वयं की पुत्री से कहा था कि सह ले बेटी सह ले, बाद में राज करेगी।

रूपमती तो एक मोटा ताज़ा औरत है पूरी गाल चलावन और गाली बकने में तो और भी चांडालन

(पृ० 237 पा 1)

पर किरपलवा सच्चा मरद है और अकिल में तो सरसौती मैया का बेटा है इसलिए कंवल को अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारने से रोकने के बाद ही जाएगा । सो ए कंवलवा, एक हाथ धानी को बलि की बकरी बनाना मान ले और दूसरे हाथ धन्ना सेठ बनने का सपना देखना शुरू कर दे ।

(पृ०235, पा 1)

कभी-कभी जब गन्ने के खेतों में आग लग जाती थी तो ये मज़दूर प्रसन्न होते थे । वे अपने मन का दुख कुछ इस प्रकार से इस लोकगीत के माध्यम से प्रकट करते थे :-

जर जाय हो मूसे मानस से रजवा
बड़का सहेब्बा के लंका मोर भयवा
उहाँ जरावे राम रावण के लंकवा
ईहाँ जराय हो करेजवा के अगवा

पथरीला सोना के भाग दो में लेखक ने उन परम्पराओं का भी उल्लेख किया है जो आज भारतीय समाज में जीवित हैं:-

आरती उतारो जी बार ब्याहन आयो ।
कन्या दान,
बिदाइ पर माँ-बाप का रुदन,
विवाह-मंडप में शादी पूरी हो जाने के बाद सभी खीर खवाई विधि को पूरा करने में लगे ।

शासक वर्ग भारतीय समाज में जातिवाद का खूब लाभ उठा रहे थे । इसमें सहायक कुछ स्वार्थी गिरमिटिया ही थे । अपनी-अपनी ज़मींदारी के फ्रांसीसी गोरे राष्ट्रीय स्तर पर आपस में मिलते थे और वहीं से गरीबों के लिए जहर लेकर लौटते थे । एक बैठक में तय हुआ कि काले लोगों को काले लोग ही मारें । आंदा गोरे की पांखी तले गिद्ध पलते थे । किरपाल, भैरोंसिह, चिनासामी, इमान अली और चंदूलाल पहले से ही गिद्धों की भूमिका निभाते आए थे । अंग्रेज़ किस प्रकार से भारतीयों को भारतीयों के ही दुश्मन बना कर अपना उल्लू सीधा कर रहे थे, उसका उदाहरण इस प्रकार देखा जा सकता है -

"किसी ने कहा कि तुम बड़ी जात के होकर छोटों के साथ उठ बैठ क्यों करते हो तो किसी ने कान में जहर डाला कि बड़ी जात का लंगट तुम्हारी औरत को आँख मारने की ताक में रहता है । इसी तरह इमाम अली ने कुरान से झूठा मसाला ढूँढकर मुसलमानों के बीच प्रचार किया कि सभी सच्चे मुसलमान नहीं ।"

(Part II, pg 14)

पथरीला सोना में लेखक ने जिन परम्पराओं और रीति-रिवाज़ों को दिखाया है वे आज भी समाज में जीवित हैं । आज भी लड़के या लड़की की हल्दी पर 'हरदी गीत' गाए जाते हैं । आज भी हल्दी से पूर्व गीत गवाई होती है । हाँ आज 'चौथारी' का रूप आधुनिक 'रिसेप्शन' ने ले लिया है जिसमें 'पीना' भी चलता है तथा मांसाहारी भोजन भी । 'हल्दी-विधि के समय आज भी मॉरीशस में शाकाहारी भोजन ही परोसा जाता है । सात तरह की सब्ज़ियाँ, पूरी आदि पत्ते पर ही मेहमान खाते हैं ।

ये गिरमिटिया या अपने साथ जादू-टोना, भूत-प्रेत की शब्दावली भी लाए जैसे – ओझा, भूतनी, भूत, डायन, डाकिनी, चुड़ैल, डीहपूजा आदि । उदाहरण दृष्टव्य है -

"खेत की रखवाली डीह करेगा । उसके लिए सिगरेट और शराब लगेगी, भयवा खेत की रच्छा करने वाला डीह तो यही लेता है । उसे चढ़ावा ना देकर खीस दिलाओ तो सब भस्म हो जाएगा ।"

(भाग III, पृ० 133)

विवाह के अवसर पर अश्लील तथ्य भी रखे जाते थे:-

'बजरंगी तुम्हारे बोलने से मैंने नंगा नाच नाचने के लिए लहंगा झाड़ा था और तुम तो सुनते ही खुशी के मारे धोती झटकारने लगे थे । अब यही कहती हूँ कि नाचने के लिए निकल ही गए हो तो मान मरजाद को पाँव पोंछने कपड़ा समझकर फेंको ।'

(भाग II, पृ० 21)

अन्य उदागरण -

गोरों के आने से पहले पूरी सजधज और धूम धड़ाके से हल्दी विधि पूरी हो जाए। गोरें आएं तो धरम मरजाद के नाम पर कौआ तक ना बोले, बस नाच की गुटुर गूं सुनाई दे।

(भाग III, पृ० 46)

ठाकुरी ने हल्दी पर अश्लील नृत्य रखवाया,
मार झटके पे खूब झटका,
हिला दे अपन छाती,
मटका दे फूलल पिछवाती

(पृ० 49)

उपन्यास के भाग चार में गांधी जी की हत्या का भी वर्णन है– रेत्नों को गांधी जी के मारे जाने की खबर से बहुत दु:ख हुआ उसने बाहर आए गले से राय जी पूछा – कौन करलक गांधीजी की हत्या ?
रायजी – ओकरे देस के एगो वासी।
का बोली भइया, भारत के ही रहे ओला करलक ऐसन बुरा काम।

(भाग IV, पृ० 208)

शिवसागर रामगुलम को गए 20 साल से ज़्यादा हुए। राजनीति में क ख ग का सबसे बड़ा दोस्त भागोमत था। क ख ग का चुनावी एजेंट बनने से लेकर सिबलोल अस्ब तक दूसरों का भी एजेंट बनता आया था। क ख ग के दिनों में उस के पास क्या कुछ होता नहीं था। क ख ग ने उसे मोटरसाइकिल देने के पास के साथ उसकी पत्नी रजनीगंधा को स्कूल में चपरासी का नाम दिलवाया था। सिबलोल इस दृष्टि से अब भी क ख ग का उपकार तो मानता पर क ख ग ने उसका तो एक बार प्राण हरने जैसा अपमान किया था। क ख ग ने मंगी के अपने दफ़्तर में उसे कौन सी गाली नहीं दी थी। कुत्ते का मूत पीवा, गू खवा, चिलम भरवा, चुटर पोंछवा, छछूंदर, माई रखवा, झाड़ू पीटा, दोगला, नपुंसक, पिछवाती बेचने वाला मडुवा, बहन बेचवा, बार कबरा, बिलार, भीख मंगा, महाभूत, भौजी रखवा, साँड़ ये गालियाँ थीं जिन्हें सिबलोल कभी भूल न पाया ! क ख ग से जब उसके संबंध अच्छे चलते थे तो उसे टूरिस्टों से जुड़ने के लिए नाव खरीदने हेतु लोन दिलवाया।

भाग IV, पृ० 503)

लेखक ने खंड पाँच तथा छह में वर्तमान राजनीति का विद्रूप चेहरा तो दिखाया ही है पर यह भी भोजपुरी के प्रभाव से बच नहीं पाया-

ऐ माई, ए दिदिया, ए चचवा, अरे फलनवा, ओ चिलनवा हमनी के लाल झंडा और चाभी के न भुलाइए। इही लाल झंडा इही चाभी हमनी के सिउसागर रामगुलाम हवन। भागोमत भैया तो ओकरे दूत हवन। भागोमत भैया की जय !

(भाग V, पृ० 88)

लोग तुम्हारे मंत्री पिता को परेशान करने आते रहते हैं। मैं उनपर एक कुत्ता लहका देती तो मंत्री के यहाँ आने की उनकी मस्ती झड़ ही जाती ।

(भाग VI, पृ०32)

तुम्हारे गाल तो इस सेब की तरह सूगा सूगा हैं। मंत्री की औरत तो झुलझुला बुढ़िया हुई।

(पृ० 33)

संस्था की ड्यूटी फ्री कार तो मोहर के यहाँ अंडा पारने के लिए पड़ी रहती है।

(भाग VI, पृ०338)

अत: यह स्पष्ट है कि लेखक की रचना में हिंदुस्तानी शैली की प्रधानता होते हुए भी वह भोजपुरी के प्रभाव से बच नहीं पाया। भोजपुरी ने उसकी रचना को जहाँ विशिष्ट बनाया है वही यह छह खंडीय उपन्यास अपने इतिहास के साथ न्याय भी कर पाया है। भोजपुरी ने इन पात्रों के संवादों को जीवन्तता दी है तथा देशकाल से जोड़ा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1.रामदेव धुरंधर, पथरीला सोना, I, II, III, हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली, 2008

2.रामदेव धुरंधर, पथरीला सोना, IV, V, VI हिन्दी बुक सेंटर, नई दिल्ली, 2012
3.हिन्दी का सामाजिक संदर्भ, सं० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, रमानाथ सहाय, के० हि० संस्थान, आगरा, 2008
4.The Export of Indian Labour Overseas 1830 – 1920
5.A New System of Slavery, Hugh Tinker, Oxford University Press, 1974
6. मॉरीशस का भोजपुरी लोक साहित्य, उदयनारायण गंगू, MGI, 2002
7.शब्दों का जीवन, भोलानाथ तिवारी, राजकमल प्रकाशन, 1977
8.Mauritian Times, 28th October, 2016, MGI Library
9.Indradhanush, सं० श्री रामशरण, मॉरीशस

वरिष्ठ प्राध्यापिका एवं पूर्व विभागाध्यक्ष,
हिन्दी विभाग,
महात्मा गांधी संस्थान,
मॉरीशस

9

सुनहरे भविष्य का कवि

प्रो. प्रीति सागर

कवि इंद्र बहादुर खरे ने अल्प जीवन में ही 'भोर के गीत', 'विजन के फूल', 'सुरबाला', 'सिंदूरी किरण', 'आरती के दीप', 'रानी दुर्गावती', 'हेमु कालाणी', 'आजादी के पहले, आजादी के बाद', 'अम्बेडकर नई किरण' आदि काव्य संग्रहों से हिंदी साहित्य को समृद्ध किया। हिंदी के प्रख्यात रचनाकार हरिशंकर परसाई के मित्र रहे कवि इंद्र बहादुर खरे का जन्म 16 दिसम्बर, 1922 को मध्यप्रदेश के गाडरवारा में हुआ था। कविता के अलावा उन्होंने अन्य साहित्यिक विधाओं में भी कलम चलाई। उनके कहानी संग्रहों में 'सपनों की नगरी', 'जीवनपथ के राही' प्रसिद्ध हैं। उन्होंने 'रजनी के पल' शीर्षक गद्य काव्य भी रचा। कथेतर विधाओं में 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल की समीक्षा दृष्टि विविध प्रसंगों में' उनकी महत्वपूर्ण पुस्तक है। 'रसायन एक अध्ययन' नामक एक अन्य ग्रंथ में उन्होंने अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', जयशंकर 'प्रसाद', मैथिलीशरण गुप्त, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानंदन पंत एवं महादेवी वर्मा के महत्व पर प्रकाश डाला है। उन्होंने बच्चों के लिए भी सुंदर गीत रचे। इस तरह बाल रचनाकार के रूप में भी इंद्र बहादुर खरे का बहुत मान है। इंद्र बहादुर खरे ने कुल बीस पुस्तकों की रचना की लेकिन मात्र 30 साल की उम्र में 13 अप्रैल, 1953 को उत्तर प्रदेश के प्रयाग में उनका देहावसान हो गया। उनका समस्त रचना-कर्म मरणोपरांत प्रकाशित हुआ।

'नीड़ के तिनके' शीर्षक कविता संग्रह कविवर इंद्रबहादुर खरे के पुत्र द्वारा वर्ष 2021 में प्रकाशित की गई पुस्तक है। इस कविता संग्रह की भूमिका में कविवर के पुत्र अमिय रंजन लिखते हैं, "नीड़ के तिनके' कवि इंद्र बहादुर खरे के युवावस्था में लिखे कुछेक गीतों का संग्रह है। इन गीतों में कहीं जीवन-मूल्यों का चित्रण है तो कहीं यौवन की उमंग, प्यार के फूलों का समावेश है तो कहीं मरूथल की छटपटाहट तो कहीं काँटों की चुभन है। कविता संग्रह में कलम की अद्भुत कल्पना शक्ति दृष्टिगोचर होती है। कहीं प्रिय का मधुर मिलन है तो कहीं क्रूर विदा की झलक है। नीड़ में मिट्टी की सोंधी-सोंधी सुगंध भी है।" भूमिका के आख़िरी हिस्से में अमिय रंजन ने 'विजन के फूल' पुस्तक की एक कविता की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की हैं-

"रंजन-मलय-खंजन' फूल से सुकुमार
अभी आए जिन्हें जग में हुए दिन चार,
ज़िंदगी जिनके लिए है, एक भोला खेल
लड़े-झगड़े एक पल में, दूसरे पल मेल"

** ** ** ** **

बिना जिनके हो न पाते मुखर मेरे गीत
संगिनी, चिर सेविका जन्म-जन्मों की मीत !

इस प्रकार इस कविता संग्रह की शुरुआत अपने परिवार और परिवेश के चित्रण से ही की गई है। 'नीड़ के तिनके' पुस्तक के पीछे कविवर के कुछ चित्र दिए गए हैं। उन चित्रों में एक चित्र बच्चों का है। इस संग्रह का नाम 'नीड़ के तिनके' है और फोटो कैप्शन के साथ कवि के बच्चों की तस्वीरें हैं जिनके नीचे लिखा है–'उड़ने उड़ाने के बाद नीड़ के तिनके।' कविवर

इंद्रबहादुर खरे का समय 1922 से 1953 तक का है। यह वह दौर था जब देश भयंकर त्रासदी से गुज़रकर आज़ादी की साँसे ले रहा था। उसने बड़े-बड़े सपने बुन रखे थे। उन संघर्षों के सपनों के साकार होने के दिन थे। कविवर इंद्रबहादुर खरे भी भविष्य के सुनहरे सपनों की तलाश में इन कविताओं की रचना करते हैं, जिनमें जीवन के प्रति राग, खुशबू और प्यार है। इन कविताओं में समय, लय, प्रकृति, स्वप्न, यौवन, अंधेरा-उजाला, मिलन-विरह, यात्रा-ठहराव, सुख-दु:ख, चिंतन-भावुकता, जीवन-मृत्यु सभी का अंकन है। कुल मिलाकर कवि का सर्वव्यापी सरोकार इन पंक्तियों से स्पष्ट झलकता है। 'छोटा सा मिट्टी का घर' कविता में कवि ग्रामीण समाज की तुलना शहर के घर से कर रहा है-

"मिट्टी के घर की मिट्टी अमर है
उठती मिट्टी की सोंधी लहर है,
इसकी मिट्टी से दूर शहर है,
इसलिए इससे दूर चकाचौंधी ज़हर है !"[1]

शहर की तुलना कवि ज़हर से कर रहा है। यह प्रभाव हिंदी कविता में बहुत पुराना है। मध्यकालीन कवि सूरदास कहते हैं, "वह मथुरा काजर की कोठरी, जे आवहिं ते कारे" निपढ़, सरल, प्रेम में पगी गोपियों ने कभी भी वृन्दावन के आगे मथुरा को अहमियत नहीं दी। मथुरा तो राजधानी थी लेकिन वहाँ प्रेम, त्याग, बलिदान और उत्सर्ग का भाव नहीं है। शहर सब-कुछ पा लेना चाहता है, देना उतना नहीं चाहता है, इसलिए कवि ने शहर की तुलना ज़हर से की है। आज के दौर में यह ज़हर न सिर्फ मानसिक, शारीरिक व्याधि का है बल्कि सार्वभौमिक रूप से फैला है। यह विशेष ध्यान देने की बात है कि कवि की ये कविताएं आज़ादी के बाद की कविताएं हैं, जिनमें कवि भविष्य के भारत की बुनावट कर रहा है। यह महज संयोग नहीं है कि कवि न सिर्फ गांधीवाद से प्रभावित है बल्कि गांधीवादी मॉडल उसके ज़हन में भी समाया हुआ है। भारत का उज्ज्वल भविष्य शहरों से नहीं गाँवों की तरक्की से ही संभव है। बड़ी ख़ूबसूरती से कवि ने गाँव के चित्र अपनी कविता में खींचे हैं, जिनमें मिट्टी, गोबर रंगी दीवार, तुलसी, झूला, दीपक, धुआँ, तकली, चरखा आदि के चित्र हैं। सही मायनो में गाँव के जीवन में इनसे ही गति और प्रगति है। सारत: कवि इंद्र बहादुर की कविताएं चित्रमयी कविताएं हैं, जिनमें ग्रामीण संसार के अद्भुत चित्र भरे हुए हैं। ये चित्र जीवन के प्रति राग पैदा करते हैं। प्रस्तुत कविता संग्रह के कवर पृष्ठ पर कवि की पत्नी का विवाह से पूर्व कपड़े पर बनाया गया चित्र अंकित है जिसमें दो पक्षी फूलों की डाल पर आलिंगनबद्ध बैठे हुए हैं। कवि का स्पष्ट संकेत भविष्य की ओर है। इन कविताओं की चित्रमयी भाषा से पाठक का ध्यान बरबस छायावाद की ओर चला जाता है। कुल मिलाकर छायावादी रुझान एवं प्रभाव स्पष्टत: परिलक्षित होता है।

इन कविताओं में भूमण्डलीकरण के दुष्परिणामों के भी संकेत मिलते हैं। "अहा ग्राम जीवन भी क्या है?" का भाव लेकर यह कविता चलती है लेकिन यथार्थ का सहारा नहीं छोड़ती है। कविता 'छोटा सा मिट्टी का घर' शहर की हवेली नहीं है यहाँ सीमित साधनों के साथ भरपूर जीवन की चाह बनी हुई है। यह कविता धूल और धुएँ से जागरण का संदेश देती है-

"सुबह से माँ के आवरण में दुआ है,
मेरे जागरण में सक्त बुआ है,
लकड़ी से आँगन में धुआँ है,
इससे खाँसी का कारण सशक्त हुआ है।"[2]

पूरी कविता जीवंतता के साथ अपनी उपस्थिति दर्ज कराती है, जिसमें "काशी फल कुष्माण्ड कहीं हैं,

कहीं लौकियाँ लटक रही हैं" से आगे का भाव कविता में दिखाई देता है-

"घर को आशीष देने कर बढ़े हैं
छप्पर पर तुरई, लौकी, कुम्हड़े चढ़े हैं,
सूखकर कैसे तुमड़े पड़े हैं,
साधु संत के जल भरने के घड़े हैं।"[3]

ये पंक्तियाँ पूरे ग्रामीण परिवेश का यथार्थ प्रस्तुत कर देती हैं लेकिन वर्तमान समय में साधु संतों का परिवेश बहुत बदल गया है। कविता का अंत बहुत सादगी भरा है। 'सादा जीवन उच्च विचार' की उक्ति को चरितार्थ करता हुआ कविता का यह अंश उल्लेखनीय है-

"बना रहे यह मिट्टी का घर
चाहे मिट्टी में मिल जाये कलेवर
न चाहूँ स्वर्ग और न ही ईश्वर
जन्मों मिले मिट्टी के घर का वर।"[4]

इस पूरी कविता में गांधी का स्वर समाया हुआ है, जहाँ वह गरीब के घर में ही ईश्वर के दर्शन एवं आवास की बात करते हैं। कवि कविता में सत्य को स्वप्न की तरह ले कर आता है। अग्रलिखित पंक्तियों में सत्य और स्वप्न के बीच एक आवाजाही दिखाई देती है-

"आधारहीन आधार लिए,
नयन में अश्रुधार लिए
मैं जीवित हूँ जाने किसका
जीवन उधार लिए।"[5]

मानव जीवन की विडम्बनाओं का चित्रण करते इस कविता संग्रह का शिल्प पाठक को बाँध लेता है। कवि इंद्रबहादुर खरे मध्यकालीन कवि की तरह संसार को झूठे व्यवहार से परिचित करा रहा है। संसार के वास्तविक स्वरूप पर पड़े मोह-माया के आवरण को कवि खोल देता है-

"आकारहीन आकार लिए
प्रण्य निराकार लिए
मै हर्षित हूँ, जाने किसका
ऋणय स्वीकार किए,
है नगर परीति भरा, लगते हैं सत्य कहीं सपने।"[6]

क्या सचमुच हमारा परिवेश प्रेम से हरा-भरा है? इस कविता संग्रह की कविताएं पाठकों को यह सोचने के लिए विवश करती हैं। इसकी ताकत हमें अंदर का ज्ञान कर देने में है, जहाँ स्वप्न यथार्थ जैसा लगता है और यथार्थ स्वप्न हो। जहाँ नित्य "झूठे लेना झूठे देना, झूठे भोजन, झूठ चबैना" का भाव हो वहाँ ये पंक्तियाँ बरबस कबीर की याद दिला देती हैं। इस संग्रह की कविताएं अंतर्मन को खोलने का कार्य करती हैं। 'एक तारिका' कविता में भी कवि अपनी बेचैनी को व्यक्त करते हुए कहता है-

"नींद कहाँ उतरी पलकों में
आज रात भर जागा हूँ मैं"[7]

बदलाव और परिवर्तन का आकांक्षी बड़े कवि दूसरों को जगाने के लिए खुद जागते रहे हैं-

"सुखिया सब संसार है खावे और सोवे
दुखिया दास कबीर है जागे और रोवे"

शायर ग़ालिब भी यही सवाल पूछते हैं-

"मौत का एक दिन मुअइन है
नींद क्यों रात भर नहीं आती"

यह बेचैनी अनवरत है। संग्रह की कविताओं के मूल में विश्वकल्याण की भावना है। कवि परहित की भावना से काव्य रचना में प्रवृत्त होता है। यहाँ संघर्ष एवं बेचैनी सिर्फ अकेले कवि की नहीं है वरन वह समाज की भी पीड़ा एवं भावों को अभिव्यक्ति देता है। संसार के विविध रंग-रागों से कवि अपनी भावनाओं को जोड़ता है। इनसे कवि को भविष्य के सपने बुनने में मदद मिलती है। 'एक तारिका' कविता में कवि लिखता है-

"गहन तिमिर के क्रूर हास्य में
डूब गये जड़ प्राणी सारे
रात काट दी गिन गिन तारे
पलक पसारे निज मन मारे."
कवि आगे लिखता है-
"तारे सदा पास रहते हैं
यह दुनिया का भ्रम है केवल
सत्य यही है 'दूर सदा वे'
और यही जीवन का सम्बल !"[8]

यही जीवन का सच है। जो दूसरों के जीवन को प्रकाशित करते हैं उन्हें अंधेरे में जागना ही पड़ता है। 'संभव' शीर्षक कविता में कवि उदासी को दूर करने के लिए कहता है-

"आँखे खोली, ली उल्टी स्वास
अपने उर को हेरा,
मत हो उदास, भर विश्वास
लगा किसी ने टेरा !"

कविता संवेदना का व्यापार है, इसलिए कवि प्रस्तुत कविता में उद्धव, कृष्ण और गोपियों को इस रूप में उपस्थित कर रहा है-

"उत्तर में अंखिया भर गई
कहते कहते उद्धव ने मुख फेरा,
सुन खुशी से सखियाँ भर गई
माधव ने 'सम्भव' कह कर फेरा !"[9]

'मन की चिड़िया' कविता में कवि ने मन पर बहुत अधिक ज़ोर दिया है। यह मन आधुनिक मन के करीब होते हुए भी छायावादी अहसास लिए हुए है। मन मध्यकालीन कविता के भी केंद्र में रहा है। मन के कपाट धीरे-धीरे खुलते हैं। चिड़िया कभी भी स्थिर नहीं रह पाती है। चंचलता उसका मूल स्वभाव है। यही मन की गति है-

"सुख दुख के तिनके चुनकर
कभी हृदय में नीड़ बनाती
कभी स्वप्न के रंग-बिरंगे
उड़न खटोले में उड़ जाती
कभी कल्पना के आँगन में
उतर बजाती पाजनिया
ऐसी मेरे मन की चिड़िया !"[10]

'समय के रंग' कविता में कवि ने समय में बदलाव को रेखांकित किया है-

"जो कभी राजा-रानी थे
वे भिखमंगे बन आज फिरते हैं.
दर-दर जो आज घूमते
वे ही कल ताज पहनते हैं।"[11]

'मैं मूल्य चुकाता जाता हूँ' कविता कलियों, फूलों-काँटों के माध्यम से सज्जन और दुर्जन के बीच अंतर स्पष्ट करती है-

"काँटों को कलियों की तलाश
कलियाँ खिलती काँटों के पास
हाथ पाव में भिदती फाँस
जख्मी कलियाँ होती उदास
मैं फूल, मूल्य चुकाता जाता हूँ,
इन कलियों से इन काँटों का !"[12]

'तो यौवन को शीश झुकाऊँ' कविता में कवि ने परिपक्वता की ओर संकेत किया है। कवि युवावस्था में जोश के साथ होश बनाए रखने की बात कहता है-

"यौवन संग अनुभव आए तो यौवन को शीश झुकाऊँ!
आस-निरास के तट, झिलमिल किरणों के नट
परछाई झांकता वृक्ष वट, चूमता सरित पट
धूप संग आए छाँव तो धूप को शीश नवाऊँ !"[13]

कवि ने इस कविता में स्पष्ट किया है कि हम जीवन में सुख-दुख, संयोग-वियोग एवं हर्ष-विषाद को समरूपता में देखें। सुख-दुख, अच्छा-बुरा ये सब एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसलिए कवि जीवन को

इकहरे दृष्टिकोण से देखने की बजाय समग्रता में देखने की सीख देता है । श्रम के साथ विश्राम, आशा के साथ निराशा, स्वप्न के साथ यथार्थ, संघर्ष के साथ विराम, युद्ध के साथ शांति अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई है । 'कुछ दृग बोले, कुछ मन बोला' कविता रीतिकालीन भाव-भंगिमाओं से अलग हटकर प्रेम की परिभाषा रचती है। इस कविता में कवि मनुष्य स्वभाव की ओर संकेत करता प्रतीत होता है । प्रेम की गति को बहुत सुंदर तरीके से दिखाया गया है-

"आकृति थी थमी-थमी सी लाज में नयन मूँदे
अधिकृति थी नमी-नमी सी, ज्यों रात की गयन बूँदें
कुछ उनने मन तोले, कुछ मैंने मन तोला !"[14]

निष्कर्ष-

अंत में कहा जा सकता है कि कवि इंद्र बहादुर खरे एक ऐसे कवि हैं जिनकी कविताओं में समाज के यथार्थ स्वरूप को देखा-परखा जा सकता है । इनकी कविताएँ समाज के वास्तविक सत्य को उजागर करती हैं । ये समाज के यथार्थ के कवि हैं । इन्होंने अपनी कविता में जहाँ एक तरफ जीवन-मूल्यों का चित्रण किया है वहीं दूसरी ओर यौवन की उमंग को परखते हुए युवावस्था की वियोगात्मक छटपटाहट को भी रेखांकित किया है। कवि अपनी कविता के माध्यम से आजादी के स्वप्न को रागात्मक रूप देने का प्रयास करता है। इनकी कविताओं में समय, प्रकृति, यौवन, अंधेरा-उजाला, मिलन-विरह, यात्रा-ठहराव, सुख-दुख, चिंतन-भावुकता, जीवन-मृत्यु सभी को समाहित किया गया है । इंद्र बहादुर खरे एक ऐसे कवि हैं जो गाँधी से प्रभावित हैं। ये अपनी कविताओं के माध्यम से यह सत्यापित करने का प्रयास करते हैं कि भारत का उज्ज्वल भविष्य शहरों से नहीं बल्कि गाँवों की तरक्की से ही संभव है । गाँधी भी बार-बार गाँवों को सँवारने की बात करते हैं। वे जन-जन की बात करते हैं, लोकहित की बात करते हैं । प्रस्तुत कविता संग्रह में इंद्र बहादुर खरे चित्रात्मक शैली का प्रयोग जगह-जगह पर करते हैं। 'छोटा सा मिट्टी का घर' कविता के माध्यम से कवि धूल और धुएँ से जागरण का संदेश देते हैं । इनके कविता संग्रह में मानव जीवन की विडम्बनाओं तथा सांसारिक मोह-माया को देखा जा सकता है। ये अपनी कविता में विश्वकल्याण की बात करते हैं। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि कवि संसार के विविध राग-रंगों से अपनी भावनाओं को जोड़ने का प्रयास करते हैं।

संदर्भ सूची:-

1.खरे, इंद्र बहादुर, नीड़ के तिनके, संदर्भ प्रकाशन भोपाल, 2021, पृष्ठ-58
2.वही, पृष्ठ-58
3.वही, पृष्ठ-59
4.वही, पृष्ठ-59
5.वही, पृष्ठ-60
6.वही, पृष्ठ-61
7.वही, पृष्ठ-62
8.वही, पृष्ठ-62
9.वही, पृष्ठ-54
10.वही, पृष्ठ-02
11.वही, पृष्ठ-03
12.वही, पृष्ठ-07
13.वही, पृष्ठ-13
14.वही, पृष्ठ-12

साहित्य विभाग, साहित्य विद्यापीठ
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा, महाराष्ट्र

10 हिमाचल प्रदेश में प्रचलित विवाह संस्कार लोकगीत

डॉ. प्रकाश चन्द

पृथ्वी पर जब मानव का अस्तित्व आया तो उसने नियमों में जीना भी आरम्भ किया होगा। नियमों में रहना उसके लिए अति आवश्यक हो गया था जिससे उसके जीवन में एक परिपाटी का उदय हो गया, जो धीरे–धीरे परम्परा बनती गई। भारतवर्ष के उत्तर में स्थित हिमालय के आंचल में बसा है हिमाचल प्रदेश। इस प्रदेश की सुन्दरता निराली और निराला है लोक जीवन। देवभूमि लोक जीवन की अनुपम परम्पराओं को आज भी अपने बाहु पाशों में संजोए हुए है। लोक स्वर लहरों के द्वारा मानो यह प्रदेश स्पंदन रूपी हृदय है, जो भारतवर्ष को सजीव बनाए हुए है। पर्वतीय स्थल की पवित्रता के विषय में लोक संस्कृति के विद्वान शास्त्री लोकनाथ मिश्र कहते हैं, ''अन्य भूमि की अपेक्षा पर्वतीय स्थली शांत वातावरण और मनोहारिणी होती है। इसलिए शास्त्रकारों ने इसे परम पवित्र बताया है। वह साधारण तपस्या से भी मनोवान्छित फल देने वाली होती है। प्राचीन काल से महात्मा तथा ऋषिगण वहां जाकर तपस्या करते आये हैं। उनके तपः प्रभाव से यह भूमि तीर्थ बन गई है।''[1] अतः यहां की खामोश वादियां, बर्फ से ढके पहाड़, श्यामल मृदु घास अनायास ही दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं। चारों ओर से अन्य भौगोलिक क्षेत्रों को भी नव जीवन प्रदान करता है।

हिमाचल क्षेत्र के सौंदर्य पर मुग्ध होकर साहित्यकार सुदर्शन वशिष्ठ लिखते हैं, ''अनेकों दिव्य–भूमियों एवं सुन्दर घाटियों, हिमाच्छादित शिखरों से परिपूर्ण यह देश अपने में अद्वितीय है। इसकी रमणीय धरा, नीली व्यास की गहन धारा एक कशिश रखती है, जो मनुष्य को चाहे–अनचाहे खींच लेती है। वैदिक नदी विपाशा से घिरी, रोहतांग शिखर से मण्डी की पहाड़ियों तक फैली हुई है। यह धरा नीली व्यास की धारा है। 32,325 फुट ऊंचे व्यास कुण्ड से निकल कर व्यास इसके वक्षस्थ्ल को ठण्डा करती है।''[2] इस प्रदेश के प्रत्येक नदी–नाले प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण है।

लोक साहित्य के द्वारा किसी क्षेत्र की सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, भौगोलिक, ऐतिहासिक और राजनीतिक परिस्थियों को जाना जाता है। प्रायः देखा गया है कि किसी क्षेत्र के इतिहास एवं परम्पराओं की जानकारी के लिए लोक साहित्य एक सशक्त माध्यम होता है। इस साहित्य में यथार्थ दृष्टिकोण को देखकर तथ्य प्रस्तुत किए जाते हैं। वर्तमान युग सूचना एवं क्रांति का युग है, लेकिन यथार्थ को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। लोक जीवन भी वैज्ञानिकता को समेटे हुए है। यह वैज्ञानिकता कौरी प्रयोगशाला नहीं है, इसमें अनुभव के द्वारा ही सत्यता सिद्ध होती है। वर्तमान समय में ऐसी खतरनाक वैश्विक महामारी फैली है, जिसे 'कोरोना' कहा गया है। इसमें लोक जीवन के विभिन्न संस्कारों एवं आचार–व्यवहारों द्वारा महामारी से बचने के उपाय पूर्व से ही निर्धारित हैं। हाथ न मिलाना, मफलर का उपयोग, किसी अनजान व्यक्ति को तत्काल स्पर्श न करना। ये सब नीति–रीति लोक साहित्य के साकारात्मक पहलू में निहित हैं।

लोकगीत लोकसाहित्य को वस्तुतः स्वर एवं लय से रागात्मक बना देते हैं। विभिन्न प्रकार के लोकगीतों में स्थान विशेष के विभिन्न रीति–रिवाजों, परम्पराओं और संस्कारों को प्रस्तुत किया जाता है। इसमें लोक कलाकार अपनी कौशलता के द्वारा अपने सुरीले स्वर से

लोकजन की वाणी को प्रभावित करता है। बिना किसी स्वार्थ के लोक गायक स्वच्छंद गायन से भाव विभोर कर देता हैं।

हिमाचल प्रदेश में प्रत्येक ऋतु, मास, पावन पर्वों, मेलों, ग्रामीण कार्यों आदि के अवसरों पर लोक गायकी का प्रचलन है। धार्मिक अनुष्ठानों को तो यहां के लोकजन बहुत ही आस्था और विश्वास के साथ निभाते हैं। ईश्वरीय प्रेम एवं स्थानीय देवताओं के प्रति असीम आस्था तो इनके हर जर–जर में विद्यमान है। भारतीय सनातन धर्म के अनुसार सोलह प्रकार के संस्कार हैं, जिन्हें षोडश संस्कार भी कहा जाता है। संस्कार का अर्थ राजपाल हिन्दी शब्दकोश में ''व्यवस्थित करना, सजाना, सुधारना, स्वभाव''[3] आदि दिया है। पहाड़ी लोकगीतों के अध्येता ओमचन्द हांडा का कथन है, ''किसी भी जाति, क्षेत्र अथवा समाज के लोकगीत उस वर्ग के अन्तर्हित व्यक्तिपरक और सामाजिक संस्कारों और परम्पराओं के उद्‌षित बिम्ब है।''[4] अतः स्पष्ट है कि लोकगीतों में लोकजन की भावनाएं विद्यमान रहती हैं। प्रायः देखा जाता है कि लोकगीतों में रस है, लय है, माधुर्य है। लोकगीत मौखिक परम्परा में विकसित एवं पल्लवित –पुष्पित होते हैं, रचयिता अज्ञात होता है। लोक साहित्यकार दीपक शर्मा लोकगीतों के विषय में कहते हैं, ''लोक–गीत अनपढ़ गांव के लोगों के भावुक हृदय से प्रस्फुटित उद्‌गार हैं, जो संगीत रूपी धारा में निर्बाध गति से अविच्छिन्न बहते चले जाते हैं।''[5] कहा जा सकता है कि लोक गीत मन को आंदोलित करने वाला निष्कपट भाव से परमानन्द की प्राप्ति का प्रवाह है। इन लोकगीतों में ग्रामीण जगत् की प्रकृति, वातावरण, लोकजीवन एवं ऋतुओं आदि का वास्तविक चित्रण प्रस्तुत होता है।

इस प्रदेश में 'विवाह संस्कार' पारम्परिक विधि से सम्पन्न होता है। यद्यपि रीति अनुसार लोक वाद्‌कों, लोकनृत्य एवं लोगीतों द्वारा विवाह का वातावरण हर्ष एवं उल्लासमय होता है। इस क्षेत्र में विवाह सादगी एवं शालीनता से किए जाते हैं। शास्त्र सम्मत विवाहों में ही विवाह गीत गाए जाने की परम्परा विद्यमान है। दोहरा विवाह को ही शास्त्र सम्मत माना जाता है। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में घर विवाह, बदाणी विवाह, हार विवाह, रीति विवाह एवं मुंड बलावणों आदि विवाहों का भी प्रचलन है। इस प्रकार मुख्यतः विधि शास्त्र, सामाजिक मेल और स्वीकृति वाले विवाह में मंगलगीत गाए जाते हैं। इन्हें स्थानीय बोली में 'लाहणें' कहा जाता है। प्रस्तुत शोधपत्र में विवाह संस्कार गीत इस प्रकार से प्रस्तुत हैं–

मामा के आगमन पर स्वागत गीत –

विवाह में मामा की भूमिका मुख्य रहती है। इस प्रदेश के प्रायः सभी क्षेत्रों में विवाह मामा के आगमन से ही शुरु होता है। वास्तव में बात यह है कि मामा के बिना विवाह की कोई भी रस्म सम्पन्न नहीं होती है। अगर पारिवारिक कटुता के कारण कभी मामा विवाह में नहीं आते हैं, तो उनसे क्षमा याचना की जाती है। शर्त यह है कि मामा के बिना दूसरा व्यक्ति विवाह में निभाई जाने वाली रस्में सम्पन्न नहीं कर सकता। कहने का भाव यह है कि मामा का स्थान माता–पिता से भी ऊंचा होता है। मामा अपने 'गरांई' (गांव के लोग) एवं अन्य निकट के सम्बंधियों को साथ लेकर, लोक वाद्य यंत्रों की धुनों पर, नाचते–गाते हुए वर या वधू के घर आते हैं। जैसे ही मामा घर के आंगन में प्रवेश करते हैं, तो प्रवेश द्वार पर घर के सभी सदस्य स्वागत के लिए आ जाते हैं। फूल–मालाओं और तिलक से उनका स्वागत किया जाता है। स्वर कौशलता पूर्ण स्त्रियां मामा के आगमन पर मंगल गीत गाती हैं, यथा–

तऐ पूछा.....ऐ.....काड़िया कागा..... काड़िया कागा...।
मामू घौरे आसा की न.....हीं।
काड़िया का....गा..... उड़दे ला पांछिया..... उड़दे ला पांछिया।
मामू घौरे आसा की न.....हीं।
तऐ पूछा.....ऐ....केड़ा री ये बूटिए.....केड़ा री ये बूटिए।
केऊ भी तू जगा ले चाली।
बहणिए ऐ..... घौरै.....ऐ....हुंमा लागौ जौगा.....।
तेऊ भी मूं जौगा ले.....ऐ....चाली।

मामा जी प्रवेश द्वार की तरफ आ रहे हैं, घर के सदस्य द्वार पर मामा का इंतजार कर रहे हैं। इस अवसर पर मामा की बहन कौआ पंछी से

कहती है– हे काले कागा! आप मेरे बेटे के मामा के घर से यह पता लगाओ कि मेरे बेटे के मामा घर पर है, कि नहीं। हे उड़ते हुए पंछी, अच्छी तरह से पता कर लो कि मामा अभी तक क्यों नहीं पहुंचे। तब तक मामा प्रवेश द्वार पर आ जाते हैं। मामा अपने साथ 'केलटी' की बूटी भी लाता है। इसी से विवाह आरम्भ होता है। यह पौधा प्रकृति के महत्व को प्रस्तुत करता है। इस पौधे की पूजा की जाती है। बूटी से कोई पूछता है कि आज तुम किस यज्ञ के लिए जा रही हो? बूटी कहती है–बहन के घर में हवन यज्ञ के साथ भांजे का विवाह हो रहा है, उस यज्ञ–हवन में मै जा रही हूं। इस प्रकार फिर मामा का आगमन हो जाता है।

जल यात्रा के गीत –

शुभ घड़ी में वर के स्नान के लिए बावड़ी से पानी लाया जाता है। इस पानी को गंगा के समान पवित्र मानते हैं। गंगा मैया एवं जल देवता का आह्वान किया जाता है। इस रस्म में मामा–मामी, माता–पिता एक–दूसरे के वस्त्रों में डोरी बांधते हैं। इसे 'आंजण' बांधना कहा जाता है। कुल पुरोहित मामा–मामी, माता–पिता, लोक वाद्य कलाकार स्वर धुनों से जल यात्रा पर निकल पड़ते हैं। लोक गीत इस प्रकार से हैं–

चाले....चाले..... मामा जी मेरे,
सूती आणैं गंगाड़ियो पा....णी।
ताऐ बोला गै मामीए मेरिए...,
छापा डाए ढेहडू दुआरे।
एक छापा ला....ऐ... ढेउडू दुआरे,
दूजी जिधी मेरे मामुए.....लागा लाता।

अर्थात् मेरे मामा जी चलो, अब सुहाग पानी लेकर आओ। गंगा मैया जी सुबह नींद में होती है। गंगा से उस बेला में जल लाना उत्तम होता है। हे! मामी जी मैं आप को बोल रहा हूं। छापा अंकित करने वाली सगी मामी, चारों ओर छापे लगाना। हे! छापे अंकित करने वाली बुआ, दरवाजे पर भी छापे अंकित करना। सोई हुई कन्याओं! कलश सैर करने चलो, मामा जल लाने जा रहे हैं। सोए हुए बजंतरियों, बाजा बजाओ, मामा जल लाने जा रहे हैं।

उबटन गीत–

स्नान से पहले उबटन लगाया जाता है। इस क्षेत्र में स्थानीय लोग 'परकैण या गुटी' (एक प्रकार का मलनाशक फल) के साथ कच्ची हल्दी, सुहागा, कस्तूरी आदि वस्तुएं एक साथ मिलाई जाती है। वर्तमान समय में बाज़ार से उबटन खरीदा जाता है। यह सुगंधित लेप जहां शरीर की मलिनता को हटाता है; वहीं त्वचा को कोमल एवं चमकदार भी बनाता है। लोकगीत इस प्रकार से है–

तोए पूछा ऐ.....मामीए सुहागुणैं,
उबटना क्या–क्या ऐ.....लाई...ऐ।
नेउड़े फूलै ऐ बेटेया.....शाड़िए शारूटाड़ी,
हड़ाजिए बूटा...ड़ी।
तेभे आई बोटणा रे बा....सा।
बौटणा लाइऐ.....आमिए मेरिए,
मूंहा उगा मैला निखारै।

अर्थात् हे! मामी जी मैं यह पूछता हूं कि इस उबटन में क्या–क्या सामग्री मिलाई जाती है। जिससे यह मधुर सुगंध आ रही है। वर के पूछने पर मामी कहती है–पहाड़ों की तलहटी में 'शाड़ी' (चूली, एक प्रकार का फल वृक्ष) उससे तथा हल्दी के तने को पीस कर उबटन बनाया जाता है। वर कहता है– मामी जी, मेरे मूंह से मैल को निकाल दो और मेरे चेहरे में उबटन लगाओ, जिससे की मैं और भी सुन्दर बन सकूं।

स्नान के गीत–

इस क्षेत्र में यह प्रचलन है कि वर व वधू का स्नान मुख्यतः धरती पर ही किया जाता है। प्रायः घर की धरातल मंजिल या स्नानाघर। इसमें स्नान के लिए माता–पिता, मामा–मामी, एक सुहागिन स्त्री तथा एक कुवारी कन्या को रखा जाता है। ये वर या वधू का स्नान करवाती हैं। स्नान के अवसर पर इस प्रकार लोकगीत गाए जाते हैं–

बेटो लोडड़ो नहाई धोई आए ना.....डोलिया पाणी,
खोड़ा रे पाचे.....मामिए सुहागणै,
पाणी पाए ओडणा खारी।
कूणिए नहाया, कूणिय धोया, कूणिय धांतुए पाटणें बैठाई।
मामूए नहाया, मामिए धोया, मामूए धांतुए पाटणें बैठाई।

मां बेटे को स्नान करवाते हुए कहती है– बेटा अभी छोटा है, ढंग से स्नान भी नहीं कर पाता है। मेरी सखियों स्नान के लिए पानी लेत आओ। अखरोट, पीपल आदि पत्तों को उस पानी में डुबोया जाता है तथा स्नान योग्य पानी की परख की जाती है।

तेल फूल के गीत–

स्नान करने के पश्चात् वर या वधू को गणेश स्थापन के कक्ष में बैठाया जाता है। कुल्लू जनपद के बाह्य सिराज में विवाह तेल अभिषेचन बहुत पुण्य कृत्य माना जाता है। वर–वधू के सगे–सम्बंधी मंत्रोच्चारण के साथ–साथ वर–वधू के सिर पर तेल डालते हैं। इसमें वर या वधू के सिर, कंधे, पैर पर दूर्वा से तेल छिड़कते हैं, इसे तेल–फूल डालना कहते हैं। लोकगीत इस प्रकार है–

बापूए आंगणे ऐ.....खड़ी उठै आमा जी, बेटेए सिरा तेला साजोए,
बापूए आंगणे ऐ.....खड़ो उठै बापू जी, बेटेए सिरा तेला साजोए।
बापूए आंगणे ऐ.....खड़ी उठै मामी जी, बाणांजूए सिरा तेला साजोए,
बापूए आंगणे ऐ.....खड़ौ उठै मामा जी, बाणांजूए सिरा तेला साजोए।

अर्थात्– पिता जी के आंगन में विराजमान मेरे सभी सगे सम्बंधियों तेल–फूल अभिषेचन का समय हो गया है। इस अवसर पर मां कहती है– बेटे के पिता जी, मामी जी और मामा जी आप सभी बारी–बारी से वर के सिर में तेल डालो।

बारात प्रस्थान के गीत–

वर पक्ष की ओर से बारात अब वधू के घर जाने के लिए तैयार हो गई है। सभी लोग उमंग और खुशी से झूम उठते हैं। सगे–संबंधी, नाते–रिश्ते के लोग, बूढ़े–बुजुर्ग, बच्चे–महिलाएं बारात में चलने के लिए तत्पर हैं। केवल वर की मां अपने पुत्र की चिंता में है, लोक गीत प्रस्तुत है–

उत्तरा कै निखड़ी काड़ी ऐ .....बादड़ी जी,
पश्चिमा हुई गु....हा.....ई।
पाणी न देए काड़ी बादाड़िए.....ऐ...जी,
साता हुई धर्मा रे दाई।

भाव यह है–उत्तर दिशा में काले बादल निकल गए हैं। इन बादलों में पानी के संकेत लग रहे हैं। बारात प्रस्थान करने वाली हैं। मां चिंतित होती जा रही है। यह वर्षा कुछ अनिष्ठ न कर पाए। पश्चिम दिशा भी अंधकारमय हो गई है। स्थानीय बोली में बादल को (स्त्रीलिंग) बादली कहते हैं। मां कहती है– हे! बदली आप वर्षा मत करना, आप मेरी धर्म बहन हो गई। कृपा करके बारात वालों को तंग न करे।

वेदी व सात फेरे के गीत–

वधू के घर आंगन में लकड़ी की एक सुन्दर वेदी बनाई जाती है। वेदी के चारों कोनों में लकड़ी की चिड़ियां तथा मध्य में एक सुन्दर मोर रखा जाता है। कुल पुरोहित मण्डप को विभिन्न रंगों के अक्षतों से सुसज्जित करता है। तत्पश्चात् वर–वधू को मंडप में लाया जाता है। वेदी के लिए मंडप सजकर तैयार हो गया है। अब माता–पिता अपनी बेटी के दुलार को इस गीत द्वारा प्रकट करते हैं–

आजा तैंणी बापूए ऐ...गोदी गिनी कोटाड़ी,
आज बापूए ऐ....आंगणा दी डाई।
कुणिए पाड़ी बेटिए, कुणिए तारी.....बेटिए कुणिए तारी,
बापूए पाड़ी बेटिए, आमीए तारी.....बेटिए आमीए तारी।
आज गै बेटिए आंगणें घाड़ी।
नजुरा भी ता दैओ गै ऐ..... चऊ कांडे कालियो,
वेदी वेशे दुई कुवारें।

भावार्थ–वधू अपने पिता से कहती है, ''हे! पिता जी, आज तक तो आप ने अपनी गोदी में मुझे खिलाया है। मैंने बचपन आप की गोदी में बिताया है। आज आप ने मुझे आंगन में निकाल दिया है।'' माता कहती है– हे! बेटी आप के पिता जी ने आपको पाल–पोस कर बड़ा किया है। मैंने आपको प्रत्येक रीति–नीति, आचार–व्यवहार तथा मर्यादा की सीख दी हैं। आज विधि के विधान को मानते हुए तथा न चाहते हुए भी आप को आंगन में पहुंचा दिया है, अर्थात् कन्यादान करने जा रहे हैं। इस अवसर पर वधू बहुत ही भयभीत एवं भावुक हो जाती है और भाग्य को मानते हुए चारों दिशाओं में नजर दौड़ाती है। भावुक होकर तथा आंखों में आंसू

लिए अपनी कुल देवियों तथा पर्वतों की देवियों का आह्वान करती है कि उसकी लोक समाज में इज्जत व रक्षा हो।

वर माला के गीत–

वर माला का प्रचलन अब इस क्षेत्र में प्रचलित हो गया है। बुजुर्गों द्वारा यह भी कहा गया है कि पहले कोई वर माला का प्रचलन नहीं था। बहुत ही सादगी और कम से कम रस्मों का रिवाज़ था। वर माला पहनाते हुए महिलाएं निम्न गीत गाती हैं–

ऐतरे बेठै बेटिए ऐ.....राजै जैं राणैं,
राजै जैं राणैं।
हारा पाई साधुए रे गड़े...ऐ।

अर्थात्– हे बेटी! क्षेत्र में बहुत ही धनी एवं सम्पन्न लोग हैं। बहुत ही रईस लोग आए हैं। आप ने एक सज्जन पुरुष को वर चुना है। अतः आप धन्य हो, क्योंकि धन, ऐश्वर्य तथा घमण्ड को उजागर करता है। लेकिन आप ने साधु प्रवृत्ति के वर को चुना है। यह आप के लिए सौभाग्य की बात है।

विदाई के गीत–

विदाई गीत सबसे अधिक करुणामय एवं हृदय विदारक होते हैं। इन लोक गीतों के विषय में लोक साहित्यकार पद्मचंद्र काश्यप लिखते हैं, ''विदाई गीत उस समय गाए जाते हैं जब वधू अनजाने साथी के साथ अपने माता–पिता को छोड़कर हमेशा के लिए जा रही हो। वधू की विदाई के गीत पाषाण हृदय को पिगला देते हैं।''[6] स्पष्ट है कि अपने चिरपरिचित आवास को छोड़कर कन्या एक अनजान देश, अनजाने वातावरण में जा रही है। माता–पिता, जिन्होंने बेटी को पाल–पोस कर इतना बड़ा किया, वे सूनापन अनुभव करते हैं। वधू को डोली में बिठाया जाता है और बारात प्रस्थान के समय निम्न गीत द्वारा वधू को विदा दी जाती है–

फिरा–फिरा घरा गोरिए, बापू आशुए रोआ।
किंया फिरा घरै, स्वामी संगे बचना होए।
सूई करे बापू आपणैं, पैरे पड़े पांवे।
छूटी ता गेई संगझी–साथणी, छूटी गुड़ियो पटारो।
छुटी गई संगणी –साथणी, छूटो बापुओ देशा।
काड़िए हेरे बादाड़िए, धारा पोरू न जाए।
नोखे ता डेवे म्हारै जानणू, इना पाणी न भैवे।
सूलै डेवे बेटिए शाउरै आपणै, पिछू आओ तेरो भाई।
सूलै डेवे शाउरै आपणै, पिछू आए गटी–गरांई।

अर्थात् हे! बेटी, घर वापिस लौटो। आप का पिता आंसू बहा रहा है। वर को वचन देने के उपरांत किस प्रकार लौटूं? अपने पिता के चरणों में गिरकर प्रणाम करो। अपनी माता के चरणों में गिरकर प्रणाम करो। अपनी सखी–सहेलियों एवं गुड़ियों के पटारे अब छूट गए हैं। हे! काले बादलों, कृपा करके उस क्षेत्र में नहीं जाना, जिस क्षेत्र में हमारे अपरिचित बाराती जा रहे हैं। हे बेटी! खुशी से जाओ, आपका भाई और गांव के लोग भी आप के संग जा रहे हैं, इसलिए चिंतित होने की आवश्यकता नहीं है। बारात अब प्रस्थान कर गई है, लेकिन मां अब भी ममता के लोभ को त्याग नहीं पा रही है। वह बेटी के विछुड़ने की चिंता सागर में डूबती जा रही है। मां कहती है–

लौंगी हेरी बेटिए सात धारा जी....,
लौंगी हेरो भाइयो खागो।
ऐवे इधा पौरी बेटिए देश बोला बागैनो लागौ।
आमा न बापू, भाई न बहिन देश हो गया पराया।

बारात चल पड़ी है, मां फिर भी बेटी के अनिष्ट की चिंता के बारे में सोचती है। अब तक बेटी आप ने शायद सात धाराएं (क्रम से पड़ने वाले पर्वत) पैदल चल कर पार कर दी हैं। बहुत दूर निकलने पर मां कहती है–यहां से परे तो बेटी अब देश पराया हो गया है। अब तो माता–पिता व भाई का देश आपसे छूट गया है।

सारांश में कहा जा सकता है कि संस्कार गीतों के द्वारा जीवन की अवस्थाओं का परिष्कार किया जाता है। संस्कार मानव जीवन के लिए उपयोगी होते हैं। हिमाचल प्रदेश के विवाह संस्कार गीतों में एक ओर यहां की संस्कृति के दर्शन हुए हैं, वहीं दूसरी ओर लोक जीवन का यथार्थ चित्रण भी प्रस्तुत हुआ है। यहां के लोगों की साधारण खान–पान व्यवस्था व साधारण वेश–भूषा आज भी विद्यमान हैं। वर–वधू के विवाह को सामान्य रूप से ही आयोजित किया

जाता है। दहेज प्रथा इस क्षेत्र में प्रचलित नहीं है। व्यक्ति के सामर्थ्य के अनुसार विवाह में खर्चा किया जाता है। अतः स्पष्ट है कि ये विवाह संस्कार गीत लोक साहित्य की अनुपम विधा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1.शास्त्री लोकनाथ मिश्र, सतलुज घाटी की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, आजाद हिन्दी स्टोर्ज चण्डीगढ़, 2001, पृष्ठ 1

2.सुदर्शन वाशिष्ठ, व्यास की धरा, आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, 1997, पृष्ठ 148

3.हरदेव बाहरी, राजपाल हिन्दी शब्दकोश, राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, 2013, पृष्ठ 714

4.ओमचंद हांडा, पहाड़ी लोकगीत, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली, 1981, पृष्ठ 1

5.दीपक शर्मा, विजी गैंणिए तारे–लामण, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक मंच निरमण्ड हिमाचल प्रदेश, 2004, पृष्ठ 4

6.पद्मचंद्र काश्यप, कुल्लुई लोक साहित्य, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1972, पृष्ठ 94

सहायक आचार्य (हिन्दी),
चित्रकूट स्कूल ऑफ लिबरल आर्ट संकाय,
शूलिनी विश्वविद्यालय, सोलन
हिमाचल प्रदेश, भारत

पुस्तक भारती रिसर्च जर्नल

Reg. No. 124726035RC0001
ISSN : 2562-6086
PRICE : $ 10.00 - Rs. 175

वर्ष 4, अप्रैल–जून 2022 अंक 2

पुस्तक भारती के प्रकाशन

स्वामी, प्रकाशक और मुद्रक : प्रो. रत्नाकर नराले,
पुस्तक भारती, टोरंटो, कनाडा, 180 Torresdale Ave. M2R 3E4 से प्रकाशित.
Email : pustak.bharati.canada@gmail.com * Web: pustak-bharati-canada.com